की शिक्षा नहीं मिलती। भिन्न भिन्न स्थानों और वस्तुओं को देख कर मनुष्य मात्र के हृदय में भांति भांति के विचार और भावनाएं उत्पन्न होती हैं, परन्तु ग्रंथकर्ता ने अपने को इन बातों से बचाया है जिससे हमारी सम्मति में ग्रन्थ में एक प्रकार का अभाव रह गया है। पर इसके होने पर भी ग्रंथ उत्तम और प्रशंसनीय है। प्रति भाग का मूल्य भी बहुत कम है, अर्थात् केवल १॥) मात्र।

श्रीगुरु हरगोविन्द जी

महात्मा भर्तृहरि जी का बचन है—परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते, स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम्। सो ठीक ही है। भला यदि इतना भी किसी पुरुष ने न कर दिखाया तो फिर उसका मनुष्यतन धारण करना क्या खाक सुफल होगा। फिर तो उसकी गिनती उन्हीं साधारण मनुष्यों में होगी जिन्हें पशु की उपमा दी जाती है, क्योंकि पशु और मनुष्य में यही भेद है कि उन्हें उपर्युक्त श्लोकार्थ के अनुसार कार्य करने का ज्ञान नहीं होता। मनुष्य में उस परमपिता परमेश्वर ने यह बात विशेष दी है और आवश्यकतानुसार वह अपने ज्ञान से लाभ उठा कर अपना जन्म सुफल कर सकता है। आवश्यकतानुसार मैंने इसलिये कहा कि संसार में भिन्न भिन्न अवस्थाओं में पड़ कर यशस्वी पुरुष भिन्न भिन्न मार्गों पर चलके महात्मा नाम धारण करने के योग्य हो गए हैं। परमात्मा की वेदरूपी आज्ञानुसार प्रत्येक मनुष्य को महात्मा होने का उद्योग करना उचित है और उसका उपाय भी सहज है, केवल साधन कठिन है। वह साधन क्या है—"कर्तव्यपालन"। भावी महात्मा पुरुष स्वभावतः ही कर्तव्यसाधन की ओर चल पड़ते हैं, अथवा यों कहिए कि मौका आतेही उनके यह भाव उत्तेजित होकर उनके जीवन ही की चाल सहसा पलट देते हैं। साधारण मनुष्यों में यह बात नहीं पाई जाती। आप लोगों ने सुना होगा कि घटना विशेषही ने राजा गाधी के पुत्र राजकुमार विश्वामित्र को महर्षि विश्वामित्र बना दिया और ब्राह्मणत्व पद की प्राप्ति करा दी; और आप लोगों से यह बात भी न छिपी होगी कि महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम जी ने क्षत्रियत्व का व्रत क्यों धारण किया। अपने परम पूज्य पिता पर क्रूर क्षत्रिय का अत्याचार देख कर, भला तेजस्वी ऋषिकुमार क्यों कर चुप बैठे रहते। उन्होंने अभिमानी क्षत्रिय को अपने फरसे का मजा चखा दिया और ऐसा चैतन्य करा दिया कि फिर कभी भी क्षत्रिय ने ऋषियों को सताने का साहस नहीं किया।

सरस्वती के गत अङ्क में आप लोगों ने देखा होगा कि महात्मा गुरु अर्जुन जी पर यवन सम्राट ने कैसे कैसे अत्याचार किए और अन्त को बिचारे शान्तचित्त महात्मा ने दुष्टों के अत्याचार से दुखित हो प्राण ही दे दिए। सच पूछिए तो यहीं से सिक्ख जाति की वीरता की जड़ जमी। भला क्या ऐसे महात्मा पुरुष का बलिदान खाली जाता। उनके तेजस्वी पुत्र हरगोविन्द जी से यह अन्त न सहा गया। पिता की इस शोचनीय मृत्यु ने उस वीर युवक के रग रग में जोश भर दिया और परम्परागत धर्मचर्चा के बदले उन्हें युद्धचर्चा का प्रेमी बना दिया और इस दृढ़प्रतिज्ञ युवक ने वह वीरता दिखाई कि प्रभातचन्द्र की नाईं यवन सम्राट का तेज भी इस बालसूर्य के आगे फीका पड़ गया। हमारे इस वीर युवक का जन्म संवत् १६५२ (ईसवी १५९५) आषाढ़ सुदी ६ रविवार को आधी रात के समय माता गङ्गाजी के गर्भ से हुआ था। इस पुत्ररत्न के उत्पन्न होने से पिता अर्जुन जी को अपार आनन्द हुआ, क्योंकि उनकी युवावस्था अतीत हो गई थी। प्रौढ़ावस्था का भी मध्याह्नकाल आ गया था। तब तक सन्तान न होने के कारण वह सर्वदा सन्तापित रहा करते और दिन पर दिन उनकी पुत्रलालसा बढ़ती जाती थी, जिस कारण उन्हें और भी कष्ट होता

था। फिर किस प्रकार उनकी स्त्री गङ्गाजी ने एक तपस्वी से पुत्र होने की आशीष पाई, इसका वर्णन गुरु अर्जुनजी के चरित्र में आ चुका है। इन्हीं योगीश्वर के आशीर्वाद से यह पुत्र अति सुन्दर और तेजस्वी हुआ, तथा पिता ने इतने दिनों की आशा का फल पा अपने को धन्य समझा और अपने दुलारे पुत्र का नाम हरगोविन्द रक्खा। इस पुत्रका तेज उसकी अवस्था के साथ क्रमशः बढ़ने लगा। अर्जुनजी भी इस पुत्ररत्न पर विशेष स्नेह रखते थे।। आप लोगों को यह बात अच्छी प्रकार से विदित होगी कि अर्जुन जी का बड़ा भाई पृथ्वीचन्द उनसे सदा बैर रखता था। उस बैर का कारण भी आप लोगों पर अच्छी प्रकार से विदित है। जब अर्जुन जी बहुत समय तक निस्सन्तान रहे तो पृथ्वीचन्द की विद्वेषाग्नि कुछ शान्त सी हो चली थी। क्योंकि उसे पूर्ण आशा हुई थी कि अर्जुन जी के बाद मेरा पुत्र तो अवश्य गुरु की गद्दी का उत्तराधिकारी होगा। परन्तु विधाता को यह स्वीकार न था कि पृथ्वीचन्द के वंशधर गुरु की गद्दी का सुख भोगें। इसलिये उसने अर्जुन जी के घर पुत्ररत्न देने की कृपाकर दुखित दम्पति का हृदय शीतल किया। परन्तु इसके विपरीत कुटिल पृथ्वीचन्द की दबी दबाई द्वेषाग्नि भड़क उठी। उसकी सब आशा विफल हो गई, उसके सब सुखस्वप्न हवा हो गए। इस निराशा ने उसे और भी कुटिलतर बना दिया। उस दुष्ट ने अर्जुन जी के नयनों के तारे निर्दोष बालक हरगोविन्द की हत्या करना स्थिर किया। सच है "आतुराणां किं न करोति पापं"। इस मायारूपी संसार में आकर जो पुरुष लोभ और क्रोधरूपी शत्रु से बचा है वह धन्य है। नहीं तो कितनों ही को इस लोभ और क्रोधरूपी अग्नि ने भस्म कर दिया और कर रही है। भला पृथ्वीचन्द की क्या हकीकत थी, यह शत्रुगण मनुष्यों को पूरा अन्धा बना कर उसके धर्म और आत्मिक बल की मनमानी लूट करते हैं। तदनुसार पृथ्वीचन्द भी इसके परिणाम से बिलकुल अन्धा हो रहा था। उस क्रूरमति पापान्ध ने यह भी न विचारा कि मेरे इस कार्य का परिणाम क्या होगा। मौका पाकर वह एक दिन शिशु हरगोविन्द को घर से बाहर कुछ दूर ले गया और वहां उनके सामने सर्प छोड़वा दिए। इस दुष्टाधिराज ने यह विचार कर शिशु हरगोविन्द की हत्या सर्पदंशन से करवानी चाही कि जिसमें मुझपर लोग इस हत्या की शङ्का न करें, मैं अनायास यह कह कर छूट जाऊं कि सर्पदंशन से इसकी मृत्यु हो गई। परन्तु शिशु हरगोविन्द तो भविष्यत में महा वीरपुरुष होनेवाला था और उसका यश संसार में फैलनेवाला था। इन सर्पों से भला वह क्योंकर मर जाता। हरगोविन्द जी सर्प देखते ही ज़ोर ज़ोर से चिल्ला कर रोने लगे। संयोगवश कहीं अर्जुन जी वहां आ निकले। अपने प्रियतम पुत्र की रोदनध्वनि पहिचान कर वे शीघ्र ही घटनास्थल पर आ मौजूद हुए और वहां की अवस्था देख कर उन्होंने अपने भाई से पूछा कि "यह क्या माजरा है," जिस पर पृथ्वीचन्द ने उत्तर दिया कि मैं हरगोविन्द को सर्पों का तमाशा दिखाने साथ ले आया था, सो यह सर्पों को देखते ही रोने लगा; चलिए इसे घर इसकी माता के पास पहुंचा आवें। बिचारा लड़का हँस पड़ा। उसी समय वह अर्जुन जी के साथ उनके घर जाकर बालक हरगोविन्द को गङ्गा जी की गोद में दे आया और वह भी माता का स्तन पान कर शान्त हुआ।

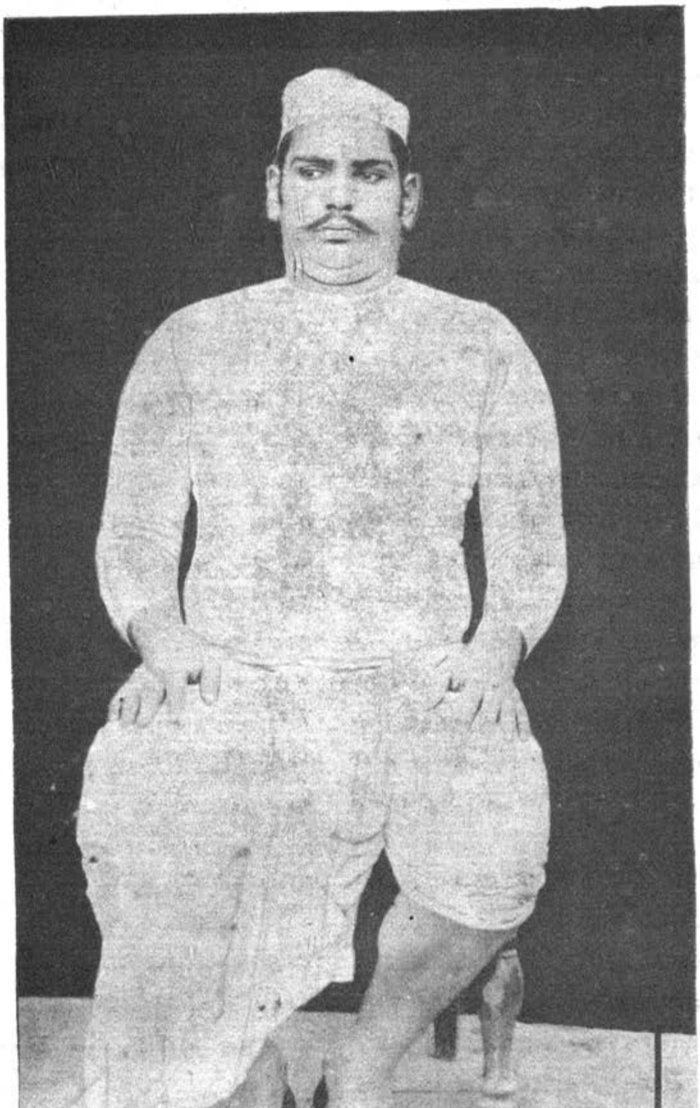
इधर जब इस दुष्ट ने देखा कि यह वार तो खाली गया तो उसने अब दूसरा उपाय रचा। वह उपाय भी अद्भुत ही था। पाठको, आपने शायद भागवत पुराण में पढ़ा होगा कि राजा कंस ने शिशु श्रीकृष्ण की हत्या के हेतु पूतना को भेजा था, जो सुन्दरी का वेष धर स्तनों में विष लगा श्रीकृष्ण को दुग्धपान करा मारने की इच्छा से गई थी, परन्तु उसकी इच्छा पूर्ण न हुई। बस, ठीक इसका अविकल अभिनय यहां भी हुआ,

अर्थात् पृथ्वीचन्द ने एक धाय अर्जुन जी के यहां नौकर रखवा दी, जिसने पृथ्वीचन्द की शिक्षा के अनुसार स्तनों में विषलेपन कर हरगोविन्द जी को दूध पिलाना चाहा। परन्तु महात्मा नानक जी का वचन क्या खाली जाता, जिन्होंने कहा है कि "जाको राखे साइयां मार न सके कोय। बाल न बांका कर सके जो जग बैरी होय"। अतएव यहां भी शिशु हरगोविन्द ने उस धाय की गोद में जाते ही रोदन करना आरम्भ किया। अनेक प्रकार के सान्त्वना से जब तक माता की गोद में न गए, चुप न हुए। उस धाय ने कई बार अपने अभिप्रायसिद्धि की चेष्टा की; परन्तु जब वह हरगोविन्द जी को गोद में लेती तभी वे चिल्ला कर रोने लगते। अतएव हरगोविन्द जी की माता ने धाय को अपने पुत्रपालन के उपयुक्त न जान नौकरी से छुड़ा दिया। पृथ्वीचन्द के दोनों वार खाली गए। उसे चारों ओर निराशा ने आ घेरा। ईर्षा और क्रोध से उसकी आत्मा तड़फड़ाने लगी और वह रात दिन हृदय में जलने लगा। इधर हरगोविन्द जी दिन दिन बड़े होने लगे। बाल्यावस्था ही में इन्हें कसरत कुश्ती तथा अस्त्रधारण से अधिक शौक था। क्रमशः जब युवावस्था प्राप्त हुई तब तो इनका पूर्ण तेज विकसित होने लगा। घोड़े पर चढ़ने, अस्त्र बाँधने और शिकार खेलने के ये बड़े शौकीन थे। सब मिलाकर इनके तीन विवाह हुए थे। पहिला तो संवत १६६१ भादों सुदी ७ को नारायण दास की कन्या दामोदरी जी से, दूसरा संवत १६७० वैशाख सुदी ८ को हरिचन्द खत्री की कन्या नानको जी से, और तीसरा संवत १६७२ सावन बदी ११ को दुर्गामल की कन्या महादेवी से।

पाठको! आपलोगों को सुनके आश्चर्य होगा कि केवल ११ वर्ष की ही अवस्था में यह गुरुगद्दी पर बैठे थे और इसी अल्पवय में इन्होंने अपना कार्य पूरी योग्यता से निबाहा। संवत् १६६३ में गद्दी पर बैठने के साथ ही इन्होंने दोनों ओर की कमर में दो तलवारें बांधनी आरम्भ कीं और पूरा पूरा वीरवेष धारण कर ये धर्माचार्य से अस्त्राचार्य बन गए। परन्तु इस अवस्था में भी गुरुगद्दी के मामूली धर्मकार्य बन्द न थे। इनके धर्मोपदेश भी ऐसे सारगर्भित होते थे कि लोग उनकी अल्पावस्था में ऐसी तीक्ष्ण धर्मबुद्धि देख चकित और चमत्कृत हो जाते। क्यों न हो, महात्मा श्री गुरु नानक जी का गद्दीधारी क्या कभी किसी बात में भी सामान्य बुद्धि का परिचय दे सकता है, और विशेष कर धर्मविषय में जो नानक जी का प्रधान उद्देश्य था! गुरु हरगोविन्द जी ने गद्दी पर बैठने के बाद अपना ठाठ बिल्कुल राजाशाही बना लिया, तथा संवत १६६५ मिती आषाढ़ बदी ५ को अमृतसर के सामने एक बड़ा रौनकदार दर्बारी महल बना कर इसका नाम "तख्त अकाल भुनगा" रक्खा और फ़र्श बिछवा गद्दी लगा प्रातःसंध्या दोनों समय दर्बार करने लगे। केवल इतना ही नहीं, वरन् उन्होंने लोहगढ़ नाम का एक दृढ़ किला भी बनवा लिया और सिपाहियों को नौकर रख युद्ध का सब सामान करने लगे। प्रातःसंध्या दोनों समय सैनिकों को कवायद लेते, तथा उत्तम उत्तम अस्त्र शस्त्र तथा तोप बन्दूक और गोली से किला भरने लगे। इन्हें वीरपुरुषों की कथा सुनने में बड़ा प्रेम था।

संवत १६६८ में लाहोर आकर इन्होंने अपने पिता अर्जुन जी की समाधि बनवाई। इनके इस राजशाही ठाठ और चढ़ते प्रताप को देख कर पृथ्वीचन्द के लड़के को बड़ी ईर्षा पैदा हुई। उसने यवन सम्राट के दीवान चन्दूलाल के मारफ़त बादशाह से यह शिकायत की कि "गुरु हरगोविन्द जी धर्म का बहाना करके हजूर के देश हस्तगत करने के लिये सेना और युद्धसामग्री एकट्ठी कर रहे हैं। उनकी नीयत अच्छी नहीं, अर्थात् वह राजविद्रोही हैं। बादशाह ने दीवान

की बातें सुन कर गुरु साहब को बुलवा भेजा। हमारे उत्साही गुरु साहब भी निर्भयचित्त हो सौ सिक्ख सवारों को साथ ले दिल्ली जा पहुंचे और दर्बार में उपस्थित हो उन्होंने शाहंशाह से यथायोग्य भेंट की। इनकी सुशीलता, नम्रता और सुन्दर कान्ति तथा वीरवेष देखकर बादशाह मोहित हो गया और इनके बातों के ढंग ने तो उसे गुरु साहब का चेला ही बना दिया। इनसे बात चीत होने पर बादशाह ने असली बातें सब समझ लीं और बड़े ही सम्मानपूर्वक इनका सत्कार किया और उन्हें ५००) रुपया रोज़ीना देना स्वीकार किया, तथा वह उनसे सविशेष प्रेम रखने लगा। जब कहीं बाहर या शिकार खेलने बादशाह की सवारी जाती, हरगोविन्द जी साथ रहा करते थे। एक दिन का वृत्तान्त है कि बादशाह के साथ यह शिकार खेलने निकले। बन में प्रवेश करते ही एक बड़ा सिंह सामने आ लपका। जब से बादशाह गोली चलावें चलावें तब से हमारे वीर युवक हरगोविन्द जी चट हाथी से कूद पड़े और उन्होंने खंजर के एक ही वार में शेर का काम तमाम कर दिया। हरगोविन्द जी की इस वीरता से शाहंशाह को अधिक प्रसन्न होना उचित था, परन्तु यहां तो मामला ही उलट गया। शाहंशाह इस बात पर रुष्ट हो गए कि तुमने मेरा शिकार क्यों मारा। किसीने सच कहा है कि "राजाओं की संगति करनी उचित नहीं, क्योंकि एकही क्षण में प्रसन्न होकर वह निहाल कर देते हैं, और दूसरे ही क्षण में ज़रासी बात पर रुष्ट हो प्राणों के गाहक बन जाते हैं"। देखिए इसका दृष्टान्त आपके सामने ही है। बादशाह के इन बचनों की गुरु साहब ने कुछ भी परवाह न की, अतएव बादशाह ने क्रोधित हो उनसे २०००००) रुपया जरीमाना तलब किया। क्यों न हो "सौ चोट सोनार की तो एक लोहार की"। कहां तो ५००) रोज मिलते थे, अब उलटे ही दो लाख देने की पारी आई। प्रथम तो हरगोविन्द जी के पास उस समय इतना द्रव्य ही न था कि वह बादशाह को जरीमाना में देते और दूसरे उन्होंने देने से सम्पूर्ण इंकार किया। इसपर यवन सम्राट और भी अधिक रुष्ट हो गया और उन्हें ग्वालियर के किले में बन्दी करवा दिया। जब पुत्र की इस बिपत्ति का सम्वाद माता गङ्गाजी को पहुंचा तो वह अति चिन्तित हुईं और पुत्र के उद्धार का उपाय सोचने लगीं। अन्त को उन्हींके आज्ञानुसार सिक्खों ने जरीमाने का रुपया इकट्ठा कर शाहंशाह को दे गुरुसाहब का उद्धार करना चाहा। परन्तु जब इसकी खबर हरगोविन्द जी को लगी तो उन्होंने इस उपाय से छुटकारा पाना बिलकुल अस्वीकार किया और अपनी माता से कहला भेजा कि मैं स्वयम् ही बन्दीखाने से छूट आऊंगा। आप किसी बात की चिन्ता न करें। गुरु साहब बन्दीखाने ही में थे कि एक दिन रात को शाहंशाह एक अत्यन्त भयानक स्वप्न देख चौंक उठा और फिर रात भर उसे निद्रा न आई। भय और चिन्ता ने उसे ऐसा आ ग्रसा कि वह कठिनाई से करवटें बदलने का साहस करता। अन्त को जब खुदा खुदा करते प्रातःकाल हुआ और झरोखे से बालरवि की किरणें बादशाही पलंग पर पड़ने लगीं तथा पक्षियों ने चुहचुहाहट मचा उषा देवी के आगमन का सम्वाद दिया, तब बादशाह सलामत भी चिन्ता और शोक से मुरझाए हुए आंख मलते उठ बैठे, तथा नित्यकर्म से निश्चिन्त हो अति उदास चित्त से दर्बार में जा बैठे। बादशाह की उदास आकृति देख कर दर्बारी सब कानाफूसी करने लगे। अन्त को प्रधान मंत्री ने विनयपूर्वक बादशाह सलामत की उदासी का कारण पूछा, जिसके उत्तर में उन्होंने रात्रि के स्वप्न का हाल सविस्तर कह सुनाया। मंत्री ने बादशाह की आज्ञा ले एक फकीर को बुलवा भेजा, जिसे दर्बारी पहुंचा हुआ समझते थे और स्वयम् शाहंशाह भी उनको सम्मान की दृष्टि से देखते थे। इन्होंने जब दर्बार में उपस्थित हो बादशाह के स्वप्न का सब वृत्तान्त सुना तब कुछ सोच विचार



स्वर्गवासी लाला ब्रजमोहन लाल जी ।

कर उत्तर दिया कि "आपने किसी खुदा के बन्दे को सताया है। उसी कारण आपको यह कुस्वप्न दिखाई दिया"। बादशाह ने जब इस बात की खोज की तो मालूम हुआ यह अत्याचार गुरु नानक जी के गद्दीधारी गुरु हरगोविन्द जी ही पर हुआ है, अतएव उन्होंने तत्क्षण हरगोविन्द जी को बन्दीगृह से छुटकारा पाने की आज्ञा भेज उन्हें दरबार में उपस्थित होने के लिये कहला भेजा। जब यह संदेसा बन्दीखाने के दारोगा को पहुंचा तब उसने गुरु साहब को नजरबन्दी से छुड़ाना चाहा। परन्तु हमारे उदार चित्त परोपकारी चरित्रनायक ने बिना अपने साथी कैदियों के कैद से छूटना अस्वीकार किया। जब बादशाह को यह सम्वाद पहुंचा तो उन्होंने गुरु साहब के साथी समस्त कैदियों के छुटकारे का आज्ञापत्र भेज दिया, तथा गुरुसाहब के साथ अन्य कैदियों का भी छुटकारा हो गया। क्यों न हो, यदि वे बिचारे दीन कैदी ऐसे महात्मा की संगत से भी छुटकारा न पाते तो फिर सत्सङ्गत का माहात्म्य ही क्या रह जाता।

अस्तु गुरु साहब पुनर्बार दरबार शाही में इसी ठाठ से उपस्थित हुए। शाहंशाह ने बड़ा सत्कार कर गुरु साहब को अपनी दहिनी ओर बैठाया और इन्हें बहुत कुछ रत्न मणि इत्यादि भेट देना चाहा। परन्तु हमारे निर्लोभी चरित्रनायक ने उस ओर देखा तक नहीं, जिससे बादशाह और भी प्रसन्न हुआ और इनसे पूर्व की अपेक्षा अधिक प्रेम रखने लगा तथा उसने गुरु साहब को एक हज़ार पैदल और पांच सौ सवार सदैव साथ रखने की आज्ञा दे दी।

आप लोगों को विदित होगा कि दीवान चन्दूलाल हरगोविन्द जी का पुश्तैनी बैरी था। इसी दुष्ट के सताने से गुरु अर्जुन जी ने अपने प्राण दिए। हमारे जोशीले गुरु साहब की आंखों में वह सर्वदा खटकता था। अतएव एक दिन मौक़ा पाकर हरगोविन्द जी ने चन्दूलाल की सारी कलई बादशाह के सामने खोल दी। जब बादशाह को अपने दीवान की दुष्टता विदित हुई तो उसने तत्क्षण उसे गुरु साहब के सपुर्द कर दिया। प्रबल बैरी को हाथ में पाकर हरगोविन्द जी का पितृ-शोक उमड़ आया। जब उनके चित्त में यह बात उठी कि इसी पामर के अत्याचार से दुखित हो मेरे परमपूज्य पिता ने नदी में डूब कर प्राण दे दिए, तब तो शोक के स्थान पर भीषण क्रोध ने इस वीर युवक के हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया और जैसे इस पामर दीवान ने गरम गरम जलते हुए बालू के तोबड़े से अर्जुन जी को तपा कर क्लेश दिया था, वैसे ही हमारे गुरु साहब ने इसे भड़भूँजे के यहां ले जाकर जलते हुए बालू का थैला उसके मुख पर चढ़ा दिया, जिसमें श्वास लेने के साथही जलते हुए बालू के कण उस पामर के दिमाग तक पहुंच जाते और अन्त को दम घुट कर उस नराधम की उपयुक्त मृत्यु हुई। उसका यह दण्ड उपयुक्त ही हुआ, क्योंकि महात्मा गुरु अर्जुन जी साहब को भी इस दुष्ट ने बिना अपराध बँधवा मंगवाया था और इससे भी बढ़ कर इसने क्लेश पहुंचाया था। किसी ने सच कहा है कि—

"त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।
अत्युत्कटैः पापपुण्यैरिहैव फलमाप्नुते"॥

ऐसे दुष्ट की यदि ऐसी शास्ति न होती तो अन्य प्रभुत्वशाली कुटिलों की आंख के पट्टे कैसे खुलते। इसके अनन्तर कुछ दिनों के पीछे गुरु हरगोविन्द जी अमृतसर लौट आए और वहां सिक्खों ने इनका अत्यन्त आदर सत्कार कर बहुत दिनों के बाद गुरु के दर्शन पा आनन्दित हो बहुत से धन रत्नादिक भेंट दिए और इनके धर्मोपदेशों तथा जातीय उत्साह के अमृतमय वाक्यों को सुन कर अपने कानों को तृप्त किया। इसी बीच में शाहंशाह ने गुरु साहब को पञ्जाब का सूबेदार नियत कर दिया, जिस कारण अपने बल बढ़ाने का इन्हें और भी उत्तम अवसर प्राप्त हुआ। कुछ

दिन अमृतसर में रह कर घूमते फिरते गुरु साहब गुजरात पहुंचे, जहां का एक नामी फकीर दूल्हा इनका शिष्य हो गया। ख्याल रहे कि युद्धचर्चा में लीन होकर हमारे सर्वगुणसम्पन्न चरित्रनायक ने धर्मचर्चा नहीं छोड़ी थी। इनके धर्मोपदेश भी ऐसे गूढ़ होते थे कि जिससे बड़े बड़े ज्ञानियों के छक्के छूट जाया करते और वे इन्हें अपना गुरु मानने लगते। गुजरात से लौट कर तिलवण्डी में आ इन्होंने नेमानी एकादशी का मेला नियत किया, जो अब तक प्रत्येक वर्ष हुआ करता है। इसी समय के लगभग गुरु साहब ने कौलसर नामक तालाब भी बनवाया था।

संसार में यह बात तो साधारण ही है कि कुटिल लोग, जिन्हें राक्षसों से भी बुरा कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। व्यर्थ ईर्षावश किसीका चढ़ता प्रताप देख कर उसकी बुराई करने पर उतारू हो जाते हैं। अतएव चन्दू के लड़के ने सम्राट शाहजहां से गुरु हरगोविन्द जी की शिकायत करनी आरम्भ की, परन्तु उसकी एक न चली। उल्टा उसीपर शाहंशाह ने क्रोधित होकर उसे कैद कर लिया और वह गुरु साहब से और भी अधिक प्रेम रखने लगा, तथा सात सौ सवार, एक हज़ार पैदल और सात तोपें बादशाह की ओर से इनके साथ रहने लगीं।

मुसलमानों से यह न सहा गया। उन्होंने बादशाह सलामत से हरगोविन्द जी के विषय में नित्य नई नई शिकायत करनी आरम्भ की और मुल्लाओं ने यह कह अपने मुरीदों की शिकायत का अनुमोदन किया कि हरगोविन्द साहब .कुरानशरीफ़ की निन्दा करते हैं और इस्लामियों को क़त्ल करने का जोश सिक्खों में फैला रहे हैं। पञ्जाब की सूबेदारी पाकर उन्हें अपनी कार्यसिद्धि का और भी उत्तम अवसर मिल गया है, इत्यादि इसी प्रकार से दरबारी लोग गुरु साहब के विरुद्ध नित्य सम्राट का कान भरने लगे, जिसका परिणाम यह हुआ कि शाहजहां ने उनसे पञ्जाब की सूबेदारी छीन ली और दरबार में उपस्थित हो उन्हें शाही आदाब बजा लाने तथा राजभक्त रहने की प्रतिज्ञा करने की आज्ञा भेज दी। हमारे तेजस्वी गुरु साहब से क्या कभी यह बात सही जा सकती थी। उन्होंने बादशाही आज्ञापत्र फाड़ कर फेंक दिया और दूत को ऐसा रूखा उत्तर सुनाया कि वह जल भुन कर खाक हो गया। जब शाही दर्बार में उपस्थित हो दूत ने हरगोविन्द जी का उत्तर सुनाया तो बादशाह सलामत तो क्रोध से जामे के बाहर हो गए और तत्क्षण एक नामी मोगल सेनापति को सात हज़ार फ़ौज के साथ हरगोविन्द जी को पकड़ लाने के लिये भेज दिया। बादशाही फ़ौज क्रमशः गुरु साहब के स्थान के निकट पहुंची। आहा! आज हमारे वीर युवक का सुप्रभात है! हरगोविन्द जी आनन्द से विह्वल हो उठे। इतने दिनों से जिस लिये अपने को प्रस्तुत कर रहे थे, आज वह अवसर आ उपस्थित हुआ। आज दुराचारी यवनों के रक्त से अपनी कृपाणधार को स्नान करावेंगे, आज धर्मबल से उत्साहित अपने महाबली सिक्खों के हाथ मोगलों को उनके अत्याचार का समुचित प्रतिफल देंगे, इन्हीं सब भावों से पूर्ण उत्साहित हो अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित, अरबी घोड़े पर सवार, तीन हज़ार सिक्ख वीरों के साथ हमारे वीरवर गुरु हरगोविन्द जी युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के सम्मुख आ डटे। शत्रुसेना के सामने आते ही उत्साही हरगोविन्द जी ने अपना घोड़ा आगे बढ़ा मोगलों पर आक्रमण कर दिया। दोनों दलों में घनघोर युद्ध ठन गया। गोला गोली और अस्त्रों की झञ्झनाहट से कान के पर्दे उड़े जाते थे, जिधर हमारे चरित्रनायक का हाथ पड़ता था उधर का मैदान चन्द मिनटों में साफ़ नज़र आता। तलवार चलाने में इनकी फुर्ती देख कर मोगल सेना स्तम्भित सी हो गई। इसी बीच में कहीं मोगल सेनापति हरगोविन्द जी के सामने आ पड़ा, बस फिर क्या देर थी, गुरु साहब ने चट से अपनी बरछी पर सिपहसालार साहब को लोक लिया

ग्रैार खां साहब चैारङ्ग हो गए। इधर सिक्खों ने भी मोगल सैनिकों के मार काट कर मैदान स.फ़ कर दिया। एक एक सिक्ख ने बीस बीस मोगलों के मार गिराया, यहां तक कि सेनापति के मरते ही बची बचाई सब सेना भाग निकली। हमारे विजयी चरित्रनायक विजयदुन्दुभी बजाते हुए घर लैाट ग्राए। इस पराजय से ग्रैार भी क्रोधित हो सम्राट ने संवत १६८५ विक्रमी में तीन सेनापतियों के ग्रधिकार में पन्द्रह हज़ार सैन्य हरगोविन्द जी पर चढ़ाई करने के लिये भेजी गई। हरगोविन्द जी ने ग्रमृतसर के किला लोहगढ़ में ग्रपना मोरचा बाँधा ग्रैार शत्रुग्रों के ग्राक्रमण करने पर सन्ध्या समय तक घोर संग्राम होता रहा। ग्रन्त के सूर्यास्त होने पर कल के लिये युद्ध स्थगित रख दोनों पक्षवालों ने ग्रपने ग्रपने खेमें में विश्राम किया। जब ग्राधी रात जा चुकी, चारों ग्रोर सन्नाटा छा गया, तब गुरु साहब उठ कर ग्रपने सिक्ख वीरों के लेकर एकाएकी मोगलों के खेमें पर जा पड़े। इस ग्राक्रमण से मोगलों की बड़ी हानि हुई। ग्रन्त के जब प्रातःकाल हुग्रा तब नियम पूर्वक युद्ध होने लगा, परन्तु सिक्खों की वीरता से मोगल सेना घबड़ा गई ग्रैार जब मोगल सेनापतियों ने देखा कि गुरु हरगोविन्द जी से ग्रधिक युद्ध करने में सिवाय हानि के कोई लाभ नहीं, तब यह कह कर कि फकीरों से क्या लड़ें, लड़ाई बन्द कर दी ग्रैार ग्रमृतसर ग्रधिकार कर दिल्ली चले गए। हरगोविन्द जी के भी ग्रमृतसर त्याग कर झवाल ग्राम में चला जाना पड़ा। जब गुरु साहब यहीं थे उस समय संवत १६८६ ग्राषाढ़ सुदी प्रतिपदा के इनकी स्नेहमयी माता गङ्गाजी परलोक सिधार गईं। ग्रपनी माता जी की मृत्यु से हमारे मातृभक्त चरित्रनायक के ग्रति शोक हुग्रा। संवत् १६७५ विक्रमी में हरगोबिन्द जी ने परगना बटाला में गोइन्दवाल नामक ग्राम बसाया।

जब बादशाही सेना हरगोविन्द जी के बिना बन्दी किए दिल्ली लैाट गई तो शाहंशाह सेनापतियों से बड़े रुष्ट हुए ग्रैार पांच हज़ार सेना के साथ फिर चढ़ाई करने की ग्राज्ञा दी। गुरु हरगोविन्द जी ने भी दो हजार सिक्खों के साथ बटाला नामक स्थान में बादशाही फ़ौज का सामना किया ग्रैार ग्रद्भुत वीरता दिखा शाहंशाही फ़ौज के परास्त किया। इस युद्ध में जालन्धर के नाज़िम का लड़का मारा गया था। इस कारण पुत्रशोक से दुखित हो उसने हरगोविन्द जी से बदला लेना चाहा ग्रैार बड़े धूमधाम से गुरुसाहब पर चढ़ाई कर दी। परन्तु हरगोविन्द जी की वीरता के सामने नाज़िम बिचारे के पैर कब टिक सकते थे। ग्रति घनघोर युद्ध के पश्चात् हमारे गुरुसाहब की तलवार ने नाज़िम साहब के युद्धक्षेत्र की कब्र में सुला दिया ग्रैार उसकी सेना सब छितिर बितिर होकर इधर उधर भाग गई।

जब बादशाही सेना मार खाकर राजधानी के लैाटी तो बादशाह ने ग्रत्यन्त क्रोधित हो पुनर्वार चढ़ाई करनी चाही, परन्तु बादशाह के मंत्री वज़ीर ख़ां ने समझाया कि हज़ूर दीन दुनियां के मालिक होकर एक फ़कीर से लड़ते शोभा नहीं देते। हरगोविन्द जी गुरुगद्दी के ग्रधिकारी हैं। चाहे वह कितना ही राजशाही ठाठ रक्खें, ग्रन्त के तो फ़कीर ही कहलावेंगे। उन्हें यदि ग्राप जीत भी लेंगे तो ग्राप उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, क्योंकि वह तो सर्वस्व त्याग कर फिर जैसे के तैसे बन जायंगे। इससे हज़ूर के उचित है कि उनपर चढ़ाई करने का विचार त्याग दें। मंत्री की यह सलाह शाहजहां के चित्त में बैठ गई ग्रैार उन्होंने युद्ध का संकल्प त्याग दिया।

इधर गुरु हरगोविन्द जी युद्ध में बार बार जयी होने के कारण ग्रति उत्साही हो उठे ग्रैार स्वेच्छा पूर्वक ग्रपनी रुचि के ग्रनुसार कार्य करने लगे। इन्हें ग्रच्छे घोड़ों का बड़ा शैाक था। लाहोर के

हाकिम के यहां अच्छी घोड़ों की एक जोड़ी अति उत्तम थी। पहिले तो हरगोविन्द जी ने लाहोर के हाकिम से उन घोड़ों की याचना की, परन्तु जब उसने देना अस्वीकार किया तो एक अति चतुर और बलवान शिष्य के द्वारा इन्होंने दोनों घोड़े चुरवा मंगवाए और खुल्लम खुल्ला उनपर सवारी करने लगे। जब नवाब साहब को इसकी खबर लगी तो वे आग बबूले हो गए और गुरु साहब को अर्थ दण्ड के साथ घोड़े लेकर उपस्थित होने की आज्ञा भेज दी। पर हमारे निर्भयचित्त गुरु साहब इन धमकियों से कब डरनेवाले थे। उन्होंने नवाब साहब को ऐसा कठोर उत्तर भेजा कि वह तो जामे से बाहर हो गया और बाइस हजार सेना के साथ उसने इन पर चढ़ाई कर दी। अमृतसर के पास उभयपक्षवालों में खूब जम कर तलवार चली। लाश पर लाश गिरने लगी। हरगोविन्द जी का एक मात्र पुत्र गुरु दित्ता अद्भुत वीरता दिखा कर इस युद्ध में मारा गया, तथा नवाबी फ़ौज के भी बहुत से नामी सर्दार मारे गए। परन्तु अन्त को विजय-लक्ष्मी ने हमारे ही चरित्रनायक पर कृपा की और नवाबी फ़ौज परास्त हो छिनिर बितिर हो गई। इस युद्ध में गुरुसाहब के भी बहुत से वीर काम आए।

इस युद्ध के थोड़े ही दिन बाद गुरु हरगोविन्द जी ने अपने अधीन मुसलमान सेनापति पैंदाखां से किसी बात पर रुष्ट हो उसे सेवा से निकाल दिया। वह जालन्धर के हाकिम के पास चला गया और उसने उसे गुरु साहब से लड़ने के लिये उभाड़ा। अतएव संवत १६९१ विक्रमी में कुछ सेना ले पैंदाखां ने गुरुसाहब पर चढ़ाई की, परन्तु दीपशिखा के पतङ्ग की नाईं वह गुरुसाहब की अस्त्ररूपी अग्नि में जल मरा। इसकी सेना को परास्त कर गुरु साहब युद्धक्षेत्र से लौट रहे थे कि इतने ही में दूसरे सेनापति असमान खां ने बची बचाई सेना इकट्ठी कर हरगोविन्द जी का पीछा किया; परन्तु गुरु साहब ने उसे भी सहज ही में परास्त कर दिया। इन युद्धों में विजय लाभ करने से गुरु हरगोविन्द जी की वीरता का यश भारत भर में फैल गया; बड़े बड़े नवाब और राजे इनसे डरा करते और बहुत से तो इनके शिष्य हो गए। गुरु हरगोविन्द जी ने मालवा देश में खूब भ्रमण किया था और वहां के अधिकांश अधिवासियों को अपना शिष्य बनाया था। इनके धर्मोपदेश से मुग्ध हो वहां का एक नामी जमींदार भी इनका शिष्य हो गया था, उसने समय समय पर धन और जन से इनकी बड़ी सहायता की थी। गुरु हरगोविन्द जी शरीर से बड़े बलवान और सुन्दर थे, और अस्त्र चलाने में इनके सामने कोई नहीं ठहर सकता था। इसके अतिरिक्त स्वभाव की सरलता और निर्भयता के लिये तो ये लोकविख्यात हो ही रहे थे। इनकी वीरता के विषय में कुछ लिखना पृष्टपेषण करना है, और साथ ही इनके धर्मोपदेशों का भी कुछ वृत्तान्त लिखा जा चुका है जिसके दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है।

गुरु हरगोविन्द जी के चित्त की दृढ़ता भी सराहने योग्य है। एकमात्र पुत्र के मरजाने पर भी उन्होंने कुछ शोक प्रकाशित न किया और धीरता पूर्वक इस दुःख को सहन किया। गुरु हरगोविन्द जी का विचार था कि सिक्खों की एक अति बलवान सेना बना कर, स्थान स्थान पर बुर्ज और किलों में उन्हें स्थापित कर सिक्खों का विजय डंका पंजाब भर में बजा दें; परन्तु कराल काल ने उनकी यह अभिलाषा पूरी न होने दी। संवत १७०१ विक्रमी चैत्र कृष्ण अमावास्या को हमारे शूरवीर चरित्रनायक परलोक सिधार गए। इनकी समाधि कीर्त्तिपुर (पंजाब) में बनी हुई वर्तमान है, जहां इनका कमान, तर्कस, पिस्तौल और एक तलवार भी रक्खी हुई है। गुरु हरगोविन्द जी की मृत्यु के बाद इनके पोते हरराय जो इनके उत्तराधिकारी हुए, जिनका चरित्र सरस्वती की आगामी संख्या में लिखा जायगा।—वेणीप्रसाद।

गुल-बहार

[१]

गङ्गा के दहिने किनारे पर मुङ्गेर बसा हुआ है। तीर से थोड़ी ही दूर पर मुङ्गेर का किला अब टूटा फूटा बेमरम्मत उजाड़ सा पड़ा है। किले के सामने 'कष्टहारिणी' घाट है। इस घाट के पास अब तक एक सुरङ्ग देख पड़ती है; पर वह कहां तक गई है, या उसके भीतर से कहां कहां राह गई हैं, इसका पता बहुत ही कम लोग जानते या नहीं ही जानते होंगे। हम इस छोटे से उपन्यास में जिस ऐतिहासिक घटना का वर्णन करेंगे, उससे इस सुरङ्ग का विशेष सम्बन्ध है, इस लिये पाठक लोग सुरङ्ग के याद रक्खें।

पलासी की लड़ाई के बाद (सन् १७५७ ई०) अभागे सिराजुद्दौला के साथ ही साथ बङ्गाल, बिहार और ओड़ीसा का भाग्य भी लैाट गया। लाट क्लाइव, मुर्शिदाबाद के रसीडण्ट वाट्स् साहिब, महाराज कृष्णचन्द्र, राजा राजवल्लभ, वनिकश्रेष्ठ जगतसेठ, दुष्ट अमीचन्द आदि लोगें ने षड़यन्त्र कर और बढ़ावा दे दे कर प्रधान सेनापति बूढ़े मीरजाफ़र ख़ां * के भी लालच की डोर में फांसा। हाय! राज्य के लोभ में पड़ कर वृद्ध मीरजाफ़र ने भी धर्म के तिलाञ्जलि दी और बङ्गाल, बिहार तथा ओड़ीसा के राज्य की डोर एक तरह से चालबाज़ लाट क्लाइव के हाथ में पकड़ा दी।

पलासी की लड़ाई के पहिले मीरज़ाफ़र ख़ां की यह इच्छा थी कि 'क्लाइव के द्वारा नरपिशाच सिराजुद्दौला के तख़्त से उतार कर खुद नवाब बनें, फिर पीछे अंगरेजों के बङ्गाले से निकाल बाहर करें। किन्तु ऐसा मन्सूबा बांध कर मीरजाफ़र ने बड़ा धोखा खाया, क्योंकि उस बिचारे को इस बात की ख़बर ही न थी कि अंगरेज़ लोग किस धातु के आदमी हैं। लड़ाई के पीछे उसने यह बात जानी कि 'पलासी की लड़ाई के बाद सचमुच अंगरेज ही बङ्गाल, बिहार और ओड़ीसा के मालिक बन बैठे और मैं केवल इनके हाथ का खिलैाना भर ही हूं और और बरायनाम नवाब बनाया गया हूं।

जब कि मीरजाफ़र का मन अंङ्गरेज़ों की ओर से ऐसा खिंचा हुआ था तो इस बात में क्या अचरज माना जा सकता है कि वह नवाब होते ही अंगरेज़ों को हेच और खोटा समझने लग गया हो! यही कारण था कि उसके शासन से अंगरेज़ प्रसन्न नहीं रहे और उन लोगों ने मीरजाफ़र के बदले उसके दामाद मीरकासिम के जोकि मीरजाफ़र के समय में सेनापति के पद पर था, बङ्गाल, बिहार और ओड़ीसा का नवाब बनाना चाहा। थोड़े ही दिनों में मीरजाफ़र निकाला गया और उसकी जगह बङ्गाल बिहार और ओड़ीसा के नवाबी तख़त पर मीरक़ासिम बैठा।

सचमुच मीरक़ासिम के राज्यशासन से उसके मित्र या शत्रु सब प्रसन्न हुए। और इधर अभागे मीरजाफ़र ने अपनी मूर्खता, कृतघ्नता, विश्वासघात और घोर पाप के लिये इतना पश्चात्ताप किया कि थोड़े ही दिनों में उसे तहेगोर पहुंचना पड़ा।

कुछ दिन पीछे मीरक़ासिम के भी मन का भाव बदल गया और उसने बङ्गाल, बिहार और ओड़ीसा से अंगरेज़ों के पैर उखाड़ देने का उपाय सोचना आरंभ किया, परन्तु यह बात तो वह बिलकुल ही भूल गया था कि 'मैं अंगरेज़ों की ही कृपा से बङ्गाले का नवाब बनाया गया हुं'। किन्तु तैा भी उसने डर के मारे अंगरेज़ों के विरुद्ध प्रगट में तो कुछ न किया, वरन उनसे घनिष्ठता का बर्ताव करने लगा; पर भीतर ही भीतर वह अगरेज़ों के निकाल बाहर करने के उपायों के सोचने से भी खाली न था। किन्तु ज्यों ज्यों राजकाज में अंगरेज़ों का ज़ोर बढ़ता गया त्यों त्यों मीरकासिम अंगरेज़ों के कामों पर बराबर अपनी अरुचि और अप्रसन्नता प्रकट करता गया।

* कोई कोई इसे ख़ज़ांची बतलाते हैं।

यों ही होते होते अन्त में वह इतना उत्तेजित हुआ कि अंगरेज़ों को एकदम बङ्गाले से निकाल बाहर करने का षड़यन्त्र करने लगा। पर उसने भी बड़ा धोखा खाया, अपने किए पर पछताया और यह समझा कि विश्वासघातियों ने उसका कहां तक सत्यानाश किया।

[२]

यहां पर हमारे पाठकों को बीते हुए इतिहास के पन्ने खोलने चाहिए। जब कि मीरज़ाफ़र खां की लड़की और मीरकासिम की प्यारी बीबी मयना बेगम अपना अन्तिम स्वास पूरा कर रही थी और दूसरे लोक में जाने के लिये तयार थी, उस समय की एक घटना का यहां पर लिखना बहुत ही आवश्यक है।

नवाबी महल की वर्णना करना हमारे ऐसे निकिञ्चन व्यक्ति के लिये बिल्कुल असम्भव है। जब कि हमने झोपड़ी में पड़े पड़े कभी महलों का सपना भी नहीं देखा, तो फिर ऐसी दशा में हम महल, वरन नवाबी महल का वर्णन क्या कर सकते हैं? किन्तु हां, यदि 'जहां न जांय रबि, वहां पहुंचै कवि' की कहावत पर ही आपलोगों का आग्रह हो तो साफ़ साफ़ सुन लीजिए कि दुर्भाग्यवश हम वैसे कवि भी नहीं हैं। तोभी आपलोगों के सन्तोष के लिये इतना लिख देते हैं कि आप लोग अपनी अपनी रुचि के अनुसार एक अद्वितीय सजे सजाए महल की कल्पना कर लीजिए और उसी महल में मीरकासिम की प्रधाना बेगम मयना बीबी को एक मखमली पलङ्ग पर मौत के गले मिलती हुई देखिए।

मृत्युशय्या पर पड़ी हुई मयना की सुन्दरता प्रातःकाल के चन्द्रमा की भांति फीकी पड़ गई है, सुन्दर चौड़े माथे पर मौत की रेखा खिंच गई है और आंखें मरने से पहिले ही पाताल को पहुंच गई हैं। ओठों पर हँसी के बदले विषाद की कालिमा फैली हुई है और गालों के गढ़े में अन्तिम दशा की स्याही भरी हुई देख पड़ती है। जो आंखें किसी समय "अमी हला हल मद भरी सेत-स्याम रतनार। जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत एक बार" की नमूना थीं, उनसे इस समय चौधारे आंसू बह रहे हैं। मयना बीबी का हाथ मीरकासिम के हाथ में है और वह भी अपनी प्यारी बेगम की अन्तिम दशा पर आंसू बहा रहा है। पास ही दो बालक अपनी माता की तुरत होनेवाली मौत के भेद को न समझ कर मनकी उमङ्ग से किलकारी मार रहे थे। उन दोनों बालकों में एक लड़का था, दूसरी लड़की। ये दोनों ही बालक यमज अर्थात् साथही उत्पन्न हुए थे; और रूप, रङ्ग, अवस्था, स्वभाव और चेहरे मोहरे में बिलकुल एक ही से थे। अवस्था दोनों की उस समय दो बरस की थी।

जिस महल में पलङ्ग पर मयना बेगम पड़ी थी, उसीके बगलवाले कमरे में नवाब के कई नौकर चाकर, लौंडियां, राजकर्मचारी, मुसाहब और कई हकीम बैठे हुए थे। सभी चुपचाप, सभी चिन्ता में डूबे हुए और सभी आंसू बहा रहे थे।

थोड़ी देर पीछे उस सन्नाटे को दूर करती हुई बहुत ही धीमी आवाज़ से मयना बेगम मीरकासिम का हाथ अपने हाथ में लेकर रोते रोते कहने लगी,—"प्यारे शौहर! अब यह लौंडी रुख़सत होती है। और दिल गवाही देता है कि बिहिश्त में ज़रूर हम दोनों की वह मुलाकात होगी, जिसमें कभी जुदाई की आग में जलनाही नहीं होता। आह! अफ़सोस! सद-अफ़सोस! यहां पर मैं तुम्हारी ख़िद्मत जी जान से भर पूर न कर सकी; लिहाज़ा लौंडी के गुनाहों को मुआफ़ करो। और प्यारे शौहर! मैं बड़ी कमबख़्त औरत हूं, मगर मेरी आख़िरी आर्ज़ू यही है कि जब ये दोनों बच्चे "अम्मा, अम्मा" कह कर मेरे लिये रोवेंगे, तब तुम इन दोनों नासमझों को अपने कलेजे से लगा कर ढाढ़स देना न भूलोगे। प्यारे! ये दोनों

बच्चे तुम्हारे ही हैं, इसलिये ज्यादः क्या कहूं, मगर देखना, इन्हें किसी तरह की तकलीफ़ न होने पावे" ।

बस अधिक वह कुछ न कह सकी और इतना कहते कहते ही उसके मुखड़े से मौत की चपेट प्रगट होने लगी । देखते देखते वह इस संसार को छोड़ कर चल बसी और मीर कासिम के पत्थर सरीखे कलेजे को भी पानी करती गई । नवाब रोता हुआ बाहर गया । पिता को रोते देख दोनों बच्चे भी बिलख बिलख कर रोने लगे। नवाब का इशारा पाकर धाय दोनों लड़कों को वहां से हटा ले गई और मयना को यथासमय गोर दी गई ।

[३]

ऊपर कही हुई घटना को आज चौदह बरस बीत गए । बालक बालिका इस समय मीर कासिम के गले के हार हो रहे हैं । यदि संसार में अब मीर कासिम की कोई प्यारी वस्तु थी तो यही दोनों बच्चे थे । अब ये दोनों सोलह बरस के हुए हैं और पिता से यह बात भी दोनों ने जानी है कि बहुत छोटी अवस्था में छोड़ कर माता परलोक सिधार गई । यद्यपि दोनों सोलह बरस के हुए सही, पर बालक की अपेक्षा बालिका बहुत ही नासमझ या भोली थी, यहां तक कि वह अभी तक संसार की किसी बात नहीं समझी थी ।' लड़के का नाम बहार अर्थात् बसन्त और लड़की का नाम गुल अर्थात् फूल था । दोनों ही अद्वितीय सुन्दर और एक से थे, यहां तक कि जब दोनों को मर्दानी पोशाक पहराई जाती तो लोग यह नहीं पहचान सकते थे कि इनमें कौन गुल है और कौन बहार । और यही कौतुक जनानी पोशाक जब दोनों को पहिनाई जाती थी, होता था ।

मीर कासिम इस समय (सन १७६२-६३ ई०) मुर्शिदाबाद से मुंगेर के किले में आकर सेना भर्ती करने लगा और उस सेना को ऐसा सुधारने लगा कि जिसमें लड़ाई के समय किसी तरह की कसर न रहने पावे । इस समय उसके साथ कोई बेगम नहीं आई थी ।

निदान वह संसार के सभी सुखों से मुह मोड़ कर ऐसी मुस्तयदी के साथ सेना के सुधारने में लगा कि यदि उसका सेनापति गुर्गनखां विश्वास-घात न करता तो फ़िरङ्गियों के लिये भयानक समय उपस्थित होने में रत्तीभर भी संदेह न था । रात दिन मीर कासिम को यही चिन्ता घेरे रहती कि क्योंकर बंगाले से फ़िरङ्गियों को निकाल बाहर करें । किन्तु ऐसे नाज़ुक समय में भी छिन भर के लिये उसने गुल बहार का ध्यान अपने जी से नहीं भुलाया था । वे दोनों भी मीर कासिम के साथ मुंगेर आए थे ।

उस समय बंगाले में अंगरेज़ों का मुखिया क्लाइव था । मीर कासिम की बगावत का हाल जासूसों ने क्लाइव के कानों तक पहुंचाया । नए देश में अपने राज्य फैलाने के लिये कैसी पेंचीली नीति की आवश्यकता है इस विषय में क्लाइव बड़ा निपुण था । उसने नवाब के अनेक कर्मचारी और सेनापति गुर्गन खां को भीतर ही भीतर अपनी ओर मिला लिया था । और उसके जासूस, जोकि नवाब के मुसाहबों में भी थे और बराबर नवाब के साथ रहते थे, रत्ती रत्ती हाल क्लाइव के कानों तक पहुंचाया करते थे । यही कारण था कि मीर कासिम का मन्सूबा क्लाइव को मालूम होगया और उसने इस सर्कशी के बारे में नवाब से कैफ़ियत तलब की ।

नवाब मीर कासिम ने क्लाइव के पत्र का ऐसा भयानक उत्तर दिया कि जिसका सहना क्लाइव सरीखे विचित्र प्रकृतिवाले राजनैतिक पुरुष के लिये कब संभव था ? बस, तुरन्त नवाब के गिरफ़्तारी के लिये अंगरेज़ी फ़ौज मुंगेर रवानः हुई । यह समाचार सुन मीर कासिम ने भी

अंगरेज़ी फ़ौज़ के मुकाबिला करने का पूरा पूरा प्रबन्ध किया और फिर उसने कई लड़ाइयां लड़ कर अनगिनती अंगरेज़ों को काट डाला। पर इस उपन्यास में उसकी अंतिम लड़ाई का ही हाल लिखा गया है।

उस समय गुर्गनख़ां नाम का एक व्यक्ति, जिसे लोग अंगरेज या अंगरेज से उत्पन्न बतलाते हैं, नवाब का बहुत ही कृपापात्र और सेनापति भी था। इस लिये नवाब ने गुर्गन ख़ां के साथ किले की रक्षा करने का पूरा पूरा बन्दोबस्त किया। पर यह बात बिचारे के सपने में भी नहीं मालूम थी कि नमकहराम गुर्गन ख़ां चतुरशिरोमणि क्लाइव से मिला हुआ है।

[४]

देखते देखते मुंगेर के किले के सामने अंगरेज़ी फ़ौज़ न आकर छावनी डाली। इसमें और और सेनापतियों के साथ स्वयं क्लाइव भी आया था। इसके पहिले मीर कासिम के साथ अंगरेज़ों की कई लड़ाइयां हुई थीं और जगह जगह उसने बड़ी निर्दयता के साथ बहुतेरे अंगरेज़ों को काट डाला था। किन्तु यहां पर हम उस अंतिम लड़ाई का हाल (सन १७६३—६४) लिखते हैं, कि जिस लड़ाई के बाद फिर किसीने बंगाले में मीर कासिम का मुख न देखा और उसी लड़ाई या मीर कासिम के भागने के बाद ही अंगरेज़ों के पैर भली भांति बङ्गाल में जम गए।

लड़ाई छिड़ने के एक दिन पहिले क्लाइव ने मीर कासिम को अंगरेज़ों की आधीनता स्वीकार कर लेने के लिये एक चिट्ठी लिखी, किन्तु विश्वास-घातक गुर्गन ख़ां के बढ़ावे में आकर उस (मीर कासिम) ने क्लाइव के पत्र का ऐसा मुंहतोड़ जवाब दिया कि जिससे अंगरेजी सेना ने लड़ाई का डङ्का बजाया।

दूसरे दिन बड़े तड़के ही से अंगरेजी सेना में जुझाऊ बाजे बजने लगे, कमर बांध कर गोरे लड़ने के लिये किले के सामने खड़े होने लगे, और किले के भीतर नवाब की फ़ौज किले की रक्षा करने के लिये जगह जगह माट के मुहाने पर कमर बांध कर खड़ी हुई। पहिले अंगरेजों की ओर से धुआं और आग के गोले उगलती हुई तोप बज्र की भांति घहरा उठी जिसका जवाब तुरत ही नवाब की ओर से दिया गया। फिर तो गहरी लड़ाई बँध गई। उस समय अंगरेजो सेना ने किले के उत्तर और पूरब ओर से हमला किया था। किले के भीतर नमक हराम गुर्गन ख़ां उत्तर की ओर और नवाब मीर कासिम पूरब की ओर किले का बचाव करते थे। मीर कासिम के पासही घोड़े पर चढ़ा हुआ सोलह बरस का शाहज़ादः बहार भी निधड़क लड़ाई का तमाशा देख रहा था और गुल किले की ऊंची बुर्ज़ी पर धाय के साथ बैठी हुई लड़ाई देख रही थी।

पूरब की ओर से नवाब ने ऐसी तेज़ी के साथ तोप दागनी आरम्भ करदी कि जिससे थोड़ी ही देर में उस ओर की अंगरेजी सेना को हार कर पीछे हटना पड़ा। पूरब से अंगरेजी सेना हार कर उत्तर ओर हमला करने वाली सेना की सहायता के लिये जामिली। यह देख नवाब ने घबरा कर बहार से कहा, "बेटा! बहार! दौड़ो गुर्गन ख़ां से कहो कि बड़ी मुस्तैदी के साथ अंगरेज़ों का मुकाबिला करे।" पिता की आज्ञा पातेही सोलह बरस का वीर बालक बहार घोड़ा दौड़ाता हुआ बात की बात में गुर्गनख़ां के पास पहुंचा और थोड़ी ही देर में लौट आकर मीर कासिम से कहने लगा—

"बाबा जान! गुर्गनख़ां हाथ पर हाथ रक्खे बैठा है और अपनी फ़ौज को भी तोप छोड़ने से उसने रोक रक्खा है। आपके हुक्म बमूजिब जब मैंने उससे जाकर अंगरेजों का मुकाबिला करने के लिये कहा तो उसने यह जवाब दिया कि अभी मुझे क्या ज़रूरत है कि फ़ुज़ूल गोले बारूद बर्बाद करूं! क्योंकि अभी तक मैं लड़ने की कोई ज़रूरत नहीं देखता।"

यह सुनतेही नवाब की आंखों में मारे क्रोध के खून उतर आया और उसने ताव पेच खाकर कहा,—"नमकहराम, एहसानफ़रामोश, बद-ज़ात, पाज़ी गुर्गन !!! अफ़सोस, मूज़ी ने बेमौके बड़ी दग़ा की !!! ख़ैर ! इस वक्त यहां पर हमारा कोई सच्चा मददगार दोस्त है ? अगर कोई हो तो फ़ौरन जाकर अभी उस सूअर के बच्चे, हरामी पिल्ले गुर्गन का सिर काट लावे।"

यह सुनतेही नवाब के पांच चार नमकहलाल मुसाहब हाथ जोड़े हुए आगे आए और सबके सब बाले—"जहांपनाह ! गुलाम हुज़ूर के हुक्म बजा लाने की इजाज़त मांगता है।"

मीर कासिम ने कहा—"ऐ ! प्यारे दोस्तो ! जाओ और फ़ौरन उस खूंख़ार मूज़ी का सिर काट कर मेरे रूबरू ले आओ।"

सुनतेही वे चारों पांचों मुसाहब घोड़ा फेकते हुए चट गुर्गन के पास पहुंचे और झट उस (गुर्गन) के सिर को धड़ से अलग कर सिर लिये हुए नवाब के सामने आए।

नवाब ने क्रोध से गुर्गनख़ां के सिर पर थूका और बाएं पैर से ठोकर मार उसे किले की दीवार के नीचे लुढ़का दिया।

इतने ही में घबराए हुए बहार ने, जोकि उस समय घोड़े पर चढ़ा हुआ बार बार किले के उत्तर को ओर आता जाता था, आकर नवाब से कहा कि,—"प्यारे वालिद ! नमकहराम गुर्गन की दगाबाज़ी से अंगरेजों ने किले के उत्तर फाटक पर अपना कबजा कर लिया है और उस ओर वाली हुज़ूर की सारी फ़ौज उन्हीं गोरों में जा मिली है। लिहाज़ा जब तक काफ़िर हम लोगों को गिरफ़्तार करें, फ़ौरन यहां से निकल चलना चाहिए। अगर जिन्दगी बरकरार रहेगी तो अल्लाह दुबारः हुकूमत व रियासत बख़्शेगा। गुस्ताख़ी मुआफ़ हो, अभी भी भागने का मौका हाथ से नहीं गया है।"

यह सुनतेही वीर मुसलमान मीरकासिम ने एक बार उत्तर ओर नज़र दौड़ाकर उधर को सारी दशा अपनी आंखों देखी और फिर बहार से कहा,—"सच है, अज़ीज़ ! बहार ! ठीक है। अब यहां पर ठहरना नामुनासिब है।"

यह कहता हुआ नवाब बहार को साथ लिये हुए किले के पूरब ओर से घोड़ा दौड़ाता हुआ दक्खिन ओर को भागा और सौ कदम चलने के बाद एक आमबाड़ी के पास पहुंच और वहीं घोड़ा छोड़ बहार के साथ ही साथ उस आमबाड़ी के भीतर घुसा।

वह आमबाड़ी कई बीघे ज़मीन को घेरे हुई और बहुत ही घनी थी और इस समय वहां पर कोई न था। नवाब ने उसके बीचोबीच एक संग-मर्मर की कब्र के पास अपने तईं पहुंचाया और वहां पहुंच और उस कब्र के बीचोबीच एक स्याह चौखूटे पत्थर पर खड़े हो कर दो एक बार उसपर अपने पैरों का बोझ डाला। इससे तुरतही उस स्याह पत्थर के पासवाला एक सफेद पत्थर धरती के अंदर किवाड़ी के पल्ले की भांति झूल गया और उसके भीतर जाने के लिये सीढ़ियां दिखलाई दीं। बहार को साथ लिये हुए नवाब सीढ़ियों को तय करता हुआ और साथही उस सफेद पत्थर को भी बन्द करता हुआ नीचे एक तहख़ाने में पहुंचा, जहां से तीन ओर को तीन रास्ते गए हुए थे। उनमें से एक राह तो उस बुर्ज़ पर गई थी, जिसपर गुल अपनी धाय के साथ बैठी हुई थी; दूसरी राह भीतर ही भीतर सुरङ्ग की भांति गङ्गा किनारे की ओर गई थी और तीसरी राह एक गुप्त ख़ज़ाने की ओर गई थी, जोकि कब्रिस्तान कह कर प्रसिद्ध था।

वहां पहुंच कर नवाब ने बहार से कहा,—"बेटा ! तुम्हें यहां के हर एक दर्वाजे खोलने के तरीके मालूम हैं न ?"

बहार,—"जी हां ! बख़ूबी मालूम हैं।"

मीरकासिम,–'बेटा! तो तुम गुल और उस की धाय के लेकर सुरङ्ग के रास्ते से दर्या किनारे जाओ और कोई किश्ती ठीक करके उसपर सवार हो हमारा इन्तज़ार करो। हम फ़ौरन कुछ ज़र व जवाहिर अपने साथ लेकर आते हैं। क्योंकि अब यहां रह कर मीरजाफ़र के खूंखार पाजी लड़के के हाथ सिराजुद्दौला की तरह मारे जाने के बनिसबत यहां से निकल जाना ही बिहतर होगा। हम हर्गिज़ पीठ न दिखलाते और जहां तक हो सकता दुश्मनों के मार कर अपनी जान देते; मगर तुम्हारी वालिदह के आखिरी जुमलों ने हमें मजबूर किया और तुम दोनों के लिये हमें दुश्मनों के पीठ दिखलाकर भागना पड़ा। इसलिये, बहार! जल्दी करो। अपनी हमशीरा को लेकर किश्ती पर सवार हो जाओ और हमारा इन्तजार करो, हम फ़ौरन आते हैं।

यह कह कर नवाब ख़ज़ाने वाली राह से चला गया और बहार गुल और धाय को बुर्ज़ पर से साथ ले गङ्गा किनारे की ओर चला।

[५]

बहार पिता की आज्ञा से जहां तक होसका जल्दी ही, अपनी बहिन और धाय को साथ ले किले की सुरङ्ग की राह से निकल गङ्गा किनारे पहुंचा।

गङ्गा सुरङ्ग के मुहाने पर ही लहराती थी और उसीके पास ही दैवसंयोग से एक छोटीसी किश्ती भी बँधी थी। बस, गुल और धाय के साथ लिए हुए बहार उस पर सवार होगया और मीरकासिम के आने की बाट जोहने लगा।

किश्ती में उन तीनों के सवार होते ही एक मांझी, जिसकी कि वह डोङ्गी थी, दौड़ा हुआ आ कर उस पर चढ़ बैठा और बहार के पहिचान कर एक लम्बी सलाम करके बोला—"हज़रत सलामत! जल्दी भागिए, कहिए आपको कहां पहुंचा दूं। आपके वालिद को गिरफ़्तार करने के लिये फिरङ्गी के जासूस छुटे हैं"।

बहार ने रोकर कहा "जरा ठहरो। मेरे वालिद अभी आते हैं।" यों कह कर वह सुरङ्ग की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगा। "यह आते हैं, यह आते हैं;" योंही एक घण्टा बीत गया और नवाब न आया; तब तो बहार के एक एक पल एक एक युग के समान बीतने लगा। पासही किले के दूसरी ओर फिरङ्गी के जीत के नगाड़े बज रहे थे, दनादन तोपों की बाढ़ दग रही थी, और सिपाहियों के कोलाहल से कान के पर्दे फटे जाते थे। ऐसे समय में बिचारा बहार अपनी बहिन के साथ किश्ती पर खड़ा खड़ा नवाब की राह तक रहा था।

मांझी ने मामला बेढब देख कर डोंगी खोल दी। हाय बिचारे बहार के कलेजे पर एकाएक बज्र घहरा पड़ा। पहिले तो उसने नवाबी जोश में आ कर मांझी को नाव खोलने से बर्जा, पर जब मांझी ने न माना, तब तो बहार ने उसकी बहुत ही आर्ज़ू मिन्नत की; किन्तु इतने पर भी डरपोक मांझी ने कुछ न सुना और किश्ती खोल ही दी।

मांझी के डरने का कारण भी था, क्योंकि जीत के नगाड़े बजाते बजाते बहुतेरे गोरे धीरे धीरे गङ्गा किनारे की ओर आ रहे थे। यदि वे किश्ती, या किश्ती पर सवार गुल और बहार को देख लेते तो अवश्य उन सभों को गिरफ़्तार करने में देर न करते। और जब यह उन लोगों के मालूम होता कि "ये लड़के नवाब के हैं और इन्हें मांझी भगाए लिए जाता है," तो चाहै लड़कों का कुछ न होता, किन्तु मांझी के प्राणों पर अवश्य आ बनती। यही सब सोच समझ कर मांझी ने बहार के रोने गिड़गिड़ाने पर कुछ भी ध्यान न दिया और प्राण के भय से किश्ती बीच धारा में खेकर ले चला। हाय! तब तक भी मीरकासिम का कहीं पता न था।

धीरे धीरे जब डोंगी बीच धारा में पहुंची, उस समय बहार ने देखा कि मीरकासिम सुरङ्ग के मुहाने से बाहर निकल कर खड़ा है। यह देख

बहार ने मांझी से किश्ती किनारे ले चलने के लिये बहुत कहा, पर उसने एक न माना। किन्तु हा! नवाब की उस समय की शोचनीय अवस्था को देख पितृभक्त बहार मारे क्रोध के भभक उठा। उसने मन में सोचा कि "यह हरामज़ादा मांझी अपनी जान के डर से किनारे की ओर किश्ती नहीं ले चलता, मगर इस नाचीज़ की जान के बनिस्बत मेरे वालिद की जान इस वक्त ज्यादः बेशकीमत और निहायत खतरे में है"। यह सोच कर बहार ने अपने पिता की विपद के आगे अपना प्राण तुच्छ समझा। यद्यपि उस समय मुङ्गेर के किले के ऊपर अंगरेज़ी पताका फहरा रही थी, और हाट, घाट, गली बाज़ारों में मीरकासिम के बैरी घूम रहे थे, क्योंकि क्लाइव ने यह सुन कर कि "मीरकासिम भागा है", उसके गिरफ़तार करने के लिये चारों ओर अपने जासूस दौड़ा दिए थे। ऐसे समय में फिर किश्ती को लौटा कर मुङ्गेर के किले वाली सुरङ्ग के पास जाना क्या हँसी खेल था। पर यह एक डरपोक मांझी के छोटे से कलेजे का काम था! यद्यपि बहार इस बात को भली भांति समझता था कि "यदि मैं पकड़ा गया तो मेरी जान और मेरी बहिन की आबरू जाने में शायद देर न लगे।" पर इसी सोच से वह क्या अपने प्यारे पिता को ऐसी अवस्था में कभी भूल या छोड़ सकता था? निदान हठी मलाह के ऊपर झल्ला कर बहार ने कमर से तलवार खैंच कर ऐसे ज़ोर से मांझी की गर्दन पर मारी कि वह एकही चोट में दो टुकड़े होकर गङ्गा में जा गिरा। उस समय डोंगी बीच धारा से टप कर उस पार की ओर पहुंच गई थी।

इधर गङ्गा किनारे खड़ा खड़ा नवाब मीरकासिम सारी लीला देख रहा था। हा! एकबार मयना बेगम के मरने के समय उसकी आंखों से आंसू गिरे थे और फिर आज पितृभक्त सुकुमार बालक बहार की पितृभक्ति देख कर उसकी आंखें डबडबा आईं। किश्ती पर से बहार टकटकी बाँध कर नवाब की ओर निहार रहा था, नवाब भी अपने वीर बालक की ओर एक टक देख रहा था।

इधर बहार ने आपही डांड़ ले कर किश्ती का मुख किले की ओर फेरा और उधर कई गोरे सुरङ्ग की ओर आते दिखलाई दिए। गोरों को देखते ही नवाब ने ज़ोर से सीटी बजाई, जिसकी आवाज सुन कर गोरे तो इधर उधर ताकने लगे, क्योंकि वे उस जगह को नहीं देख सकते थे जहां पर नवाब खड़ा खड़ा उनको देख सकता था। किन्तु बहार ने अपने पिता की सीटी पहिचान कर मुख फेरा। तब नवाब ने रूमाल हिला कर कुछ इशारा किया, जिसे समझ कर बहार किश्ती को उसी पार की ओर ले चला और नवाब गोरों के वहां पर पहुंचने के पहिले ही सुरङ्ग के भीतर घुस कर ग़ायब होगया।

उधर तो बहार गङ्गा के उस पर जाकर गांव में छिपने का विचार करने लगा और इधर गोरों ने सुरङ्ग के पास पहुंच और मशाल बाल उसके भीतर घुस कर देखा तो वह एक छोटीसी गुफा दिखलाई दी, जिसमें कहीं पर भी किसी राह या कोठरी आदि का कोई चिन्ह नहीं जान पड़ता था।

[क्रमशः

श्रीकिशोरीलाल गोस्वामी।

चीनी-तुर्किस्तान

काश्मीर से उत्तर-पश्चिम की ओर प्रकृति की शोभा निराली ही है। प्रकृति-देवी के अनुपम सुन्दर स्वरूप से आल्हादित होकर यात्री जिस समय उत्तर की ओर जाता है तो उसे कहीं तो दुर्गम मार्ग, कहीं अति वेगवान नद और नाले और कहीं दीवार की भांति खड़े पहाड़ मिलते हैं, जिन्हें देख कर यह प्रतीत होता है कि मनुष्य के भौगोलिक ज्ञान की यहीं सीमा है। समुद्र से बारह और चौदह हजार फ़ीट ऊंचे ज़ोजिला और बर्ज़िल पास हैं। उनके परे भयानक घाटियां

ग्रोर सिन्ध नदी है। सिन्ध का वेग यहां ऐसा तीव्र है कि कोसों तक कोई नाव नहीं मिलती ग्रोर यदि कोई साहसी नाव ले भी जाय तो केवल इस बात की शिक्षा देने के लिये कि साहस का भी कहीं अन्त है। पर विद्यारसिक को संसार की कोई भी कठिनाई उसके उद्देश्य में सफलीभूत होने से नहीं रोक सकती। नैनसन की तत्परता के ग्रागे उत्तरीय प्रान्त की बारह महीने रहनेवाली बरफ़ को भी हार माननी पड़ी। कई बेर हतोत्साह होने पर भी क्रिस्टोफ़र कोलम्बस ने अपने उद्देश्य को न तो मार्ग की कठिनाई के कारण ग्रोर न उन पशुसमान भयानक नरभक्षी जातियों के कठोर आक्रमणों के कारण छोड़ दिया। हम भी आज एक इस समय के कोलम्बस की यात्रा का बहुत ही संक्षिप्त वर्णन करेंगे कि जिसने एक ऐसे देश में जो वर्तमान समय में असभ्य जातियों का निवासस्थान है, प्राचीन, मनोहर सभ्यता का अनुसन्धान किया है।

डाक्टर स्टाइन आज कल पंजाब में स्कूलों के इन्स्पेक्टर हैं। उन्हें पुरातत्वसम्बन्धी विषयों में बड़ा अनुराग है। उन्होंने संस्कृत के बृहत् ग्रोर एक मात्र काश्मीर इतिहास राजतरङ्गिणी का अंगरेज़ी अनुवाद किया है। जिस समय वे उसका उल्था कर रहे थे, वे स्वयं काश्मीर गए ग्रोर वहां उनसे काश्मीर के असिस्टेण्ट रज़िडण्ट से मिलाप हुआ। उन्होंने स्टाइन साहब से चीनी तुर्किस्तान में प्राचीन लिपि, गृह ग्रोर तसवीरें इत्यादि के कहीं कहीं मिलने का समाचार कहा। इसी समय डाक्टर होरनले ने एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में चीनी-तुर्किस्तान की प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री पर एक बड़ा लेख लिखा। इसके पूर्व कई रूसी यात्री इस प्रान्त में यात्रा करते हुए प्राचीन बहुमूल्य पदार्थ ले आए थे। वहां के मुसलमानों ने जब देखा कि फरङ्गी लोग हमेशा प्राचीन पुस्तकें इत्यादि ढूंढा करते हैं तो वे बनावटी पुस्तकें जिन पर विचित्र अक्षर खुदे हुए हों साहब लोगों के हाथ बेच कर रुपया कमाने लगे। ऐसे ढंगों का एक दल हो गया जिनके सर्दार इसलाम आखूं का नाम बहुत विख्यात है। डाक्टर होरनले के लेख ग्रोर तसवीरों में इसकी दी हुई अधिक सामग्री है ग्रोर डा० होरनले को धूर्त पर श्रद्धा भी थी। यह धूर्त दो एक सच्ची वस्तुओं के साथ बनावटी झूठे पदार्थ ऐसी चालाकी से दे दिया करता था कि सब लोगों को इसकी सचाई पर विश्वास था। पर जब डाक्टर स्टाइन ने (जो केवल इस प्रान्त के पुरातत्वसम्बन्धी अनुसन्धान ही के उद्देश्य से गए थे) विशेष छान बीन की तो इस इसलाम आखूं की पोल खुल गई। स्टाइन ने इसको अपने सामने बुलाके ऐसे टेढ़े प्रश्न पूछे कि इन्हें स्वयं अपना भेद खोलना पड़ा। भारतवर्षीय इतिहासज्ञ लोगों को मालूम होगा कि सेण्ट जेवियर पादरी के साथ यहां के पण्डितों ने भी ऐसा ही किया था। जब उन्होंने वेद मांगे तो पण्डितों ने कोई माहात्म्य उठा कर दे दिया ग्रोर सैंकड़ों रुपए झस लिए। इसलाम आखूं से जिस प्रकार साहब ने सब कबूल करवा लिया वह जानने योग्य है, पर उन्होंने उसे बड़ी रिपोर्ट में लिखने का वादा किया है। इस धूर्त यवन का यह नियम था कि वह साधारण देशी कागज़ को, जो खुतन नगर में बनता है, एक प्रकार की गोंद में रंग के धुएं में लटका देता था, जिसमें यह धोखा हो कि कोई प्राचीन लिपि है। अब इस पर खुदे हुए ब्लैाक से जो उसने बनवा रक्खे थे, प्राचीन भाषा ब्राह्मी अथवा खरोष्टी के अक्षर छाप देता था ग्रोर एक पुस्तक बनवा कर उस के पत्रों में बालू छोड़ देता था, जिसमें यह मालूम हो कि पुस्तक गड़ी हुई मिली हैं। परन्तु डाक्टर स्टाइन ने एक सहल उपाय इन के जाली सिद्ध करने का किया। जिस गोंद में यह कागज़ रंगा जाता था वह पानी में घुल जाती है, इस कारण गीला हाथ लगाते ही उसका रंग बदलने लगता था। इसके विरुद्ध जो सचमुच प्राचीन लिपियां थी उन पर पानी का इतनी जल्द कुछ भी असर नहीं होता था।

निदान जिस देश में जाने के लिये इतनी कठिनाइयां थीं और जिस स्थान में प्राचीन पदार्थों के संग्रह होने की ऐसी सम्भावना थी, वहां जाने के लिये स्टाइन साहब उत्सुक थे। उन्होंने अपनी इच्छा डाक्टर होरनले पर प्रकट की, जिन्होंने तुरन्त भारतवर्षीय सरकार से इनकी प्रार्थना स्वीकार कराई और इनको इंडिया और पञ्जाब की गवर्नमेण्ट ने मिलकर ९००० रु० व्यय के हेतु दिया और चीनी राज्य में जाने के लिये पास दिलवाया। सर्वे (नाप) विभाग से एक आदमी इनकी सहायता के लिये और कुछ बन्दूकें भी इनको मिलीं। २९ मई सं० १९०० को साहब श्रीनगर से गिलगिट की ओर रवाना हुए। यहां इन्हें एक गहरी और खड़ी चट्टान में एक बुद्ध की मूर्ति खुदी हुई मिली। चीनी यात्रियों ने "पोलियो" प्रदेश का वर्णन किया है। अब लों इस स्थान का ठीक पता नहीं मिला था, परन्तु "स्कारदो" में साहब ने वहां के निवासियों को "पोलियो" कहते हुए सुना। इससे प्रतीत होता है कि "स्कारदो" का प्राचीन नाम पोलियो रहा होगा। गिलगिट से हुंज़ा गए। रास्ते में उन्हें हिमालय की अद्भुत और मोहिनी छटा के दर्शन मिले। यहां से थोल गए। इस स्थान में २० फ़ीट का एक प्राचीन बौद्ध स्तूप देखा जिसकी कुर्सी पक्की थी। यहां से पामीर गए। वहां के लोग जो दस वर्ष पूर्व ऐसे भयानक थे, अब सभ्य हो चले हैं। साहब ने इसे भाषाओं का अजायबघर कहा है, क्योंकि यहां बहुतसी भाषाएं बोली जाती हैं। इसके परे खुतन प्रान्त है। यहां कोहमारी में एक बौद्ध मन्दिर है, जिसका नाम ह्यानसाङ्ग ने गोश्रृङ्ग लिखा है। इस स्थान में अब एक मुसलमानी मज़ार है। एक गुफ़ा भी यहां है जहां से ऐसा कहते हैं कि ग्रिनार्ड और डिट्रियल डरिन्स को प्राचीन ग्रन्थ मिले थे।

खुतन एक मरुस्थल है। इसमें थोड़ी दूर तक उपजाऊ भूमि भी मिलती है। इसमें बहुत से सिक्के मोहरें पाई जाती हैं। इसमें स्टाइन साहब को मिट्टी के बर्तन मिले जिन पर बड़ा सुन्दर रङ्ग दिया हुआ था। एक घड़े पर एक बन्दर बैठा सितार बजा रहा है, दूसरे पर एक गौ की मूर्ति है। दो एक बुद्ध अथवा वैरागियों की मूर्तियां भी मिलीं। यहां इन्हें कोई प्राचीन मकान नहीं मिला। इसका कारण पत्थर का न होना है, क्योंकि जिस स्थान पर ऐसी सभ्यतासूचक वस्तुएं मिलें वहां मकान का अभाव असम्भव है। मालूम होता है कि यहां लकड़ी के मकान थे जो जल में समय पाकर गल गए हैं। यहां पर नालों में लोग सोना जमा किया करते हैं और इन प्राचीन वस्तुओं के अनुसन्धान का प्रारम्भ सोने ही के लालच का परिणाम है। यह प्रश्न बड़ा रोचक है कि इस निर्जन स्थान में सोना कहां से आया। साहब ने इस सोने को लेकर जांचा। मालूम हुआ कि यह सोने का पत्र है। पाठकों पर यह विदित कर देना उचित है कि जिस मार्ग से साहब यात्रा कर रहे थे उसी स्थान से फाहियान और ह्यानसांग भी गए थे। इसी स्थान का वर्णन पढ़ते हुए "सयूकी" अर्थात् इन चीनी यात्रियों की कथा में उन्हें मिला कि यहां उनके समय में बौद्ध मन्दिर और मठ थे जिनमें बुद्ध देव की स्वर्णमूर्तियां थीं और मन्दिरों की भीत पर सोने के पत्र मढ़े थे। क्या आश्चर्य है कि उस खण्डहर में से बहता हुआ पानी उन स्वर्ण कणों को अपने साथ बहा लाता हो कि जो मूर्तियों और भीतों को सुसज्जित करते थे। यहां प्राचीन स्तूपों के चिन्ह जगह जगह मिलते हैं, पर मुसलमानों ने उन सबको अपनी ज़ियारतगाहें बना लिया है।

यहां से आगे बढ़ कर साहब दन्दान उइलीक़ स्थान में गए। इस शब्द का अर्थ है "हाथी दांत के घर"। यहां इनको बड़ी प्राचीन और रोचक वस्तुएं मिलीं। एक मकान खुदवाने पर उसमें लकड़ी का सामान, दीवारों पर बुद्ध की मूर्तियां और छोटी छोटी मूर्तियां जो दीवारों से उखड़ कर गिर पड़ी थीं, मिलीं। साहब इनमें से कुछ अपने साथ ले आए हैं। इन दीवारों पर एक विशेष प्रकार का

सुन्दर प्रस्तर है। यहां पर एक मूर्ति इन्हें मिली जिसका शरीर किसी देवता का मालूम होता है, परन्तु सिर चूहे का है। ह्यानसांग ने लिखा है कि खुतन के निकटवर्ती स्थानों में चूहे की पूजा होती थी। तसवीरों के रङ्ग पर बालू का असर स्पष्ट मालूम होता है। इन्हीं खण्डहरों में प्राचीन हस्त-लिपियां भी प्राप्त हुईं जिनका सविस्तर वर्णन साहब अपनी बड़ी रिपोर्ट में करेंगे। एक प्रकार की काठ की पुस्तकें यहां मिलीं। यह हिन्दुस्तानी पट्टी की तरह से हैं।

इसके और परे नीया नदी के तट पर कई प्राचीन गृह खोदे गए। यहां साहब को एक प्राचीन समय का दरी मिली और इनकी कोठरियों को देख कर यह मालूम हो जाता है कि उस समय में लोगों का रहन सहन कैसा था, मिलनेवाले कमरे में लोग कैसी वस्तुएं रक्खा करते थे। साहब को यहां एक क़लम मिली जिसपर हड्डी का मुट्ठा है। प्राचीन जातियों की विद्यावृद्धि का ज्ञान प्राचीन लिपियों से होता है। यहां काग़ज़ पर लिपियां बहुत कम मिलती हैं। दो तख़्तियां लेकर जो कुछ लिखना चाहा वह पहिले एक पर फिर उसीके सम्बन्ध में दूसरे पर लिख कर तख़्तियों को बन्द कर देते थे। किसी किसी तख़्ती में चमड़े के तसमे मिलते हैं जो छेद में खोंसे हुए हैं, जिनसे ये तख़्तियां बांधी जाती थीं। इनमें विषय धार्मिक नहीं है, वरञ्च सामाजिक पत्रव्यवहार। जैसे काश्मीर की प्राचीन लिपियों पर, यद्यपि वे ब्राह्मणों की संग्रह की हुई हैं, चमड़े की जिलदें मिलती हैं, उसी प्रकार यहां तख़्ती के बदले चमड़े पर लिखे हुए अक्षर मिले हैं। यह चमड़ा अब सिमट गया है, परन्तु इसको फैलाने से इस पर लिखे हुए अक्षर पढ़े जा सकते हैं। इन लिपियों के अक्षर खरोष्ठी, ब्राह्मी, पाली और संस्कृत हैं। काग़ज़ की लिपियों पर विषय बौद्धधर्म है और काठ की तख़्तियों पर सरकारी, अथवा किसी पुरुष विशेष का पत्रव्यवहार है। इन कोठरियों में से एक जगह एक काठ की टूटी हुई कुर्सी भी मिली है जिसपर बड़ी सुन्दर नकाशी है।

इसके परे "इन्दोर", "कारडैाङ्ग" इत्यादि स्थानों में भी इसी प्रकार की वस्तुएं मिलीं। साहब को जिस सिलसिले तरतीब से ये प्राचीन वस्तुएं मिलीं, उसी तरह नम्बर देकर उन्होंने उन्हें अपने साथ रख लिया हैं, जिसमें उनके समय का निर्णय करने में सुगमता हो। अपनी बड़ी रिपोर्ट में साहब प्रत्येक लिपि के समय का निर्णय करेंगे। कहीं कहीं उन्होंने इस छोटे वृत्तान्त में भी संकेतमात्र दे दिया है। उदाहरण के हेतु इतना लिख दिया जाता है कि इन लिपियों में "य" अक्षर "थ" लिखा है जिससे उसका समय सातवीं शताब्दी सन् ईसवी निश्चय होता है और सिक्कों में सबसे पीछे के आठवीं शताब्दी के मिलते हैं। इन स्थानों की सभ्यता और समय में भिन्नता है, जिसका बड़ी रिपोर्ट में पृथक् वर्णन होगा। कारदङ्ग में साहब को सूखी गाजर, कई प्रकार की दाल इत्यादि खाने के पदार्थ मिले।

काशग़र बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है। चीनी यात्रियों को यहां सैंकड़ों स्तूप मिले थे, परन्तु हमारे येरोपियन यात्री को केवल एक ही स्तूप मिला जिसमें मुसलमानों ने क़बरें बना ली हैं। इसका रङ्ग अभी फीका पड़ गया है, अब दुरुस्त नहीं हो सकता। पुराने स्तूपों के खण्डहर अबलों विद्यमान हैं। इस स्थान को लोग "कोनह शहर" (प्राचीन नगर) कहते हैं।

यों तो सरकार अंगरेज़ी के प्रभाव से जहाँ जहां साहब बहादुर गए, इन्हें चीनी राज्य के मजिस्ट्रेट (अम्बान) लोगों ने पूरी सहायता दी। मजदूर, भोजन के पदार्थ, चौकीदार इत्यादि बराबर मिलते गए, परन्तु विदेश में इन वस्तुओं के अतिरिक्त यदि किसी प्रकार उस प्रान्त के निवासियों की सहायता और सहानुभूति का लाभ भी मिल जाय तो सोने में सुगन्ध है। पाठकों को आश्चर्य होगा कि जिस जिस स्थान पर यह जाकर चीनी यात्रियों का नाम

लेते थे और उनसे यह कहते थे कि मैं भी उन्हीं स्थानों में भ्रमण कर रहा हूं जहां उनके चरण पड़े थे और इसके साथ ही भारतवर्ष और मध्य एशिया के प्राचीन सम्बन्ध के। उनपर प्रकट करते ते। वे लेग साहब का बड़ा सम्मान करते थे।

इन सब स्थानों में भ्रमण करते और सामग्री जमा करते हुए २९ मई के। साहब १२ बड़े बड़े बक्स इन सामग्रियों से भर कर ट्रान्स-केस्पियन रेलवे से होते हुए, जिसकी आज्ञा उन्होंने मंगा ली थी, लण्डन की ओर पधारे। उनके साथी भारतवर्ष की ओर लैाटे जिनमें से सब-सरवेयर रामसिंह के उत्साह, व्युत्पत्ति, परिश्रम और सुशीलता की साहब ने बड़ी प्रशंसा की है। हमें ते। सब-सरवेयर रामसिंह के दर्शनों की इच्छा होती है।

लन्दन पहुंचने पर साहब के। छ सप्ताह लन्दन में रहने की आज्ञा मिली और इतने समय में इन्होंने अपनी वस्तुओं की सूची बना कर उसे विख्यात अजायबख़ाने अर्थात् बृटिश म्यूजियम में रखवा दिया। अब फिर भारतीय गवर्नमेण्ट ने स्टाइन साहब के। १८ महीने लन्दन में रहने की आज्ञा दी है, जिसमें वे पूरी रिपोर्ट तैयार कर सरकार की सेवा में प्रकाश करने के हेतु दें। धन्य हैं स्टाइन साहब और धन्य अंगरेज़ी सरकार!

अब एक बात और कह कर हम इस लेख के। समाप्त करते हैं। यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि यह प्राचीन सभ्यता जिसकी सामग्री स्टाइन साहब के। प्राप्त हुई, किस जाति की है और इतिहास इस पर चुप क्यों है। तिब्बत के एक ग्रन्थ में लिखा है जिसको रोकहिल ने अपने रचे "बुद्ध के जीवनचरित्र" में उद्धृत किया है कि तक्षिला के निवासियों के। अशोक ने हिमालय के उत्तरी प्रान्तों में निकाल दिया था। इस कथा का वर्णन ह्वानसांग ने भी किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान चीनी तुर्किस्तान में यही जाति जाकर बसी। यह बात नीचे लिखे प्रमाणों से दृढ़ हो जाती है।

(१) अशोक के पीछे के शिलालेखों में अधिकांश का विषय सामाजिक है—धार्मिक नहीं। इस प्रान्त की तख़्तियों में भी पत्रव्यवहार ही मिले हैं। पंजाब में भी अशोक के पीछे के ग्रन्थ ऐसे ही मिले हैं। (२) जैसे सिक्के तक्षिला में मिलते हैं, बनावट में उसी प्रकार के चीनी-तुर्किस्तान में भी मिले हैं। (३) तक्षिला में भी खरोष्टी अक्षरों का प्रयोग होता था, यहां भी उन्हीं का था।

अन्त में यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि हमें साहब की पूरी रिपोर्ट पढ़ने की बड़ी उत्कंठा है और ईश्वर और सरकार से प्रार्थना है कि वे उन के अन्यान्य स्थानों के अनुसन्धान में सहायक हों।

रामनारायण मिश्र।

बीजापुर

ईश्वर की ऐसी विचित्र लीला है कि कभी उजाड़ स्थान के। वह सुन्दर नगरी बनाता है और कभी सुहावनी नगरी के। उजाड़ कर देता है। यह उसकी माने। नित्य की लीला है। अस्तु, हम अपने पाठकों के। ऐसा ही एक उदाहरण सुनाते हैं। भारतवर्ष के दक्षिणी देशों में बीजापुर एक प्राचीन प्रसिद्ध नगरी है जो शोलापुर से दक्षिण लगभग ३० कोस की दूरी पर कृष्णा और भीमा नदी के बीच में पर्वत पर बसी हुई है। इसके आस पास सृष्टिकर्ता ने कोई सुन्दर सुहावन मनभावन दृश्य नहीं दिखाया है। जिधर देखिए जहां तहां लम्बे चौड़े सरपट मैदान पर कहीं कहीं अनाज की हरी भरी लहलहाती खेती अपनी शोभा दिखाती है। चाहे सृष्टिकर्ता का सृष्टिवैचित्र कुछ न हो, पर पुराने समय के उस स्थान के रहनेवाले मुसलमानों की अनेक प्रकार की कारीगरी से बनी बहुत सी इमारतें अभी तक पुरानी कारीगरी की साक्षी दे रही हैं। पहिले ते। नगर के पास पहुंचतेही बीजापुर की नामी इमा-

रत "गोल-गुम्बज" की छटा दिखाई देती है। फिर तो ज्यों ज्यों नगरी निकट आती जाती है, त्यों त्यों गोर मसजिद आदि छोटी बड़ी इमारतें देखने में आती जाती हैं। कोई साबूत, कोई अध-टूटी, किसीका भग्नावशेष देख पड़ता है। नगर के चौतरफा पत्थर का कोट बना हुआ है, जिस को परिधि अनुमान ३ कोस के घेरे की होगी। कोट के नीचे गहिरी खाई खुदी हुई है जिसे देखते ही आक्रमणकारी जनों की आशातृष्णा सूख जाती है। कोट के ऊपर जगह जगह पर सुन्दर सुदृढ़ अनेक बुर्ज बने हुए हैं, जिससे कोट की अधिक दृढ़ता प्रतिपादित हो रही है। कहते हैं कि किसी समय में जब इस नगरी के सौभाग्य के दिन थे, इसका भाग्यभानु अपनी पूर्ण दीप्ति से दीप्तिमान हो रहा था। तब इसके स्वामी ने अपने भाई बेटों को नगर के एक एक गुम्बज बनाने का भार सौंपा था। सबने अपनी अपनी रुचि के अनुसार एक एक गुम्बज बनवाया था। इसीसे वे अब एक दूसरे से सम्पूर्ण भिन्न रंग ढंग के हैं। नगर में भी अनेक मीनार हैं जिनमें सोरजी, लन्दा, कसब, फिरंगी और ऊपरी बुरूज ही नामी हैं। सोरजी (सिंहराज) बुरुज के ऊपर बीजापुर की प्रसिद्ध तोप "मालक मयदान" रक्खी हुई है, पर यह अपने काम में कैसी है यह नहीं कह सकते। ऐसा सुनने में आता है कि जब यह छूटती थी तो अपने वैरियों का दर्प चूर्ण कर देती थी। इस तोप का घेरा इतना बड़ा है कि एक मनुष्य इसके अन्दर घुस कर भली प्रकार से सो सकता है। इस मालक मैदान तोप को मुहम्मद रुमी खां ने बनवाया था। कहते हैं कि रुमीखां ने इस तोप को अपने पुत्र को बलिदान देके उसके रक्त से सींचा था। ऊपरी गुम्बज अली आदिल शाह के प्रसिद्ध सेनापति हैदर खां ने बनवाया था। नगर के चारों ओर जो कोट है वह तालीकोट की लड़ाई के बाद कमजोर हो गया था, इस लिये अली आदिलशाह ने अपने यहां के एक एक भाग एक एक सर्दारों को बनवाने की आज्ञा दे दी थी। जिस समय नगर का कोट बनने लगा था उस समय हैदर खां किसी वैरी से युद्ध कर रहे थे; जब लौट आए तो देखा कि कोट लगभग बन चुका है; इससे वह इस दीवार के बनवाने में कुछ सहायता न दे सके, पर इस बात का उनके जी में मलाल बना रहा। इसलिये बादशाह ने कहा कि अगर तुम्हें बनवाना है तो एक ऐसी मीनार बनवाओ जो सबसे ऊंची बने तो तुम्हारा नाम भी सब लोगों से ऊंचा माना जायगा। तभी उन्होंने एक ऊंची जगह पर एक ऐसी ऊंची मीनार बनवाई जिस पर चढ़ने से नगर के सब स्थान दिखाई देते हैं और नगर के चाहे कहीं से इस मीनार को देख लो, इसीसे इसका नाम "ऊपरी बुरुज" रक्खा गया। इसके ऊपर दो बड़ी बड़ी तोपें रक्खी हुई हैं। इसमें एक तोप बहुत लम्बी है। लन्दा कसब के ऊपर भी एक बड़ी तोप रक्खी हुई है। सन् १६८६ ईसवी में जब औरङ्गजेब ने बीजापुर पर चढ़ाई की थी उस समय उन्होंने जो गोला गोली मारे थे अभी तक उनके निशान जगह जगह पर बने हुए हैं। पहिले "मङ्गल-तोरण" नाम का नगर में जाने का एक बड़ा फाटक था। औरङ्गजेब भी उसी रास्ते से नगर में घुसा था। इसलिये पहिला नाम बदल कर उसने उसका नाम "फतह फाटक" रक्खा था।

नगर में जाने के पांच फाटक थे जिनमें ४ तो अभी तक ज्यों के त्यों हैं, पांचवां फाटक बन्द हो गया है, क्योंकि सरकारी कचहरी वग़ैरह इमारतें उसी ओर हैं। उस ओर जाने से नगर की एक सुन्दर छटा दिखाई देती है। जगह जगह टूटी फूटी इमारतों के देखने से अनुमान होता है कि किसी समय यह एक हरीभरी सुन्दर नगरी थी। जो दो चार पुरानी इमारतें रह गई हैं, अगर उन्हें छोड़ दिया जाय तो अब नगर में देखने लायक कुछ भी नहीं है। आज कल बची बचाई जो कुछ लोगों की इमारत या देखने लायक चीज़ें हैं, वे सब पश्चिम वाले फाटक के सामने या आस पास ही दिखाई

देती हैं, और इसके सिवाय जिधर जाइए उधर ही उजाड़ बीहड़ बियाबान दिखाई देता है। फाटक के अन्दर दोतर्फा पेड़ों की श्रेणियों की ऐसी कतार लगी हुई है कि वह सीधी किले के अन्दर चली गई है। इस किले का नाम अर्क किला है। यह गोल बना हुआ है और एक मील के घेरे में है। इसी स्थान में बड़े बड़े साहब सूबों के रहने योग्य सुन्दर कोठियां बनी हुई हैं। किले के अन्दर अनेक प्रसिद्ध इमारतें हैं, जैसे सतमहला महल, आनन्द महल, बाहर प्रस्तार महल, मालिक जहान और अली आदिल की अधबनी समाधि का स्थान और पुरानी मसजिद। ये सब इस बात का प्रमाण देती हैं कि कोई समय ऐसा था कि जब बीजापुर के भाग्य जगे हुए होंगे, पर कालबली ने उसे भी मिट्टी में मिला दिया। वर्तमान अवस्था को देख उस समय जी को इस बात पर खेद होता है कि हा विधाता, बने को बिथोरना तो मानो तेरा नित्य का खेल है। तात्पर्य यह कि इस समय बीजापुर की उजाड़ दशा हो रही है। बड़ी बड़ी इमारतें, मसजिदें और बिलासियों के राजभवन खण्डहर से टूटे फूटे उजड़े बिगड़े पड़े हैं।

इस समय जितनी इमारतें हैं उन सभों में अर्क किला सर्वोत्तम माना जाता है। यूसफ आदिल शाह पहिले सुलतान ने इस किले का बनवाना प्रारम्भ किया था और इब्राहीम आदिल शाह के समय में यह बन के तैयार हो गया था। ध्यान से देखने से जान पड़ता है कि हिन्दुओं के पुराने सुन्दर सुन्दर देवताओं के मन्दिरों को तोड़ फोड़ के मुसलमानों ने अपनी मनमानी मसजिदें और विलासभवन बनवा लिए थे। कहते हैं कि दूसरे इब्राहीम बादशाह को अपने धर्म्म पर से अश्रद्धा हो गई थी और हिन्दूधर्म पर श्रद्धा थी, इसलिये वे नरसोवा नामक मन्दिर में आके पूजा सेवा किया करते थे। अभी तक कभी कभी उसी जगह पर मेला लगा करता है। अर्क किले की लम्बी चौड़ी सुन्दर कई एक इमारतें एक में मिली हुई अच्छी छटा दिखाती हैं। चीन महल में जजी, मजिस्ट्रेटी और कलेक्टरी की कचहरी लगती है। इसीके पास सतमहला भवन अपनी ऊंचाई के अभिमान में सिर ऊंचा किए छाती फुलाए खड़ा है। गगन महल में पुराने राजा लोग दरबार करते थे। उसीके सामने ही एक बड़ी खिलान अब तक है, पर सब जगह से यह खिलान खिल गई है। इस हालत पर भी अपनी समता में वह दूसरी नहीं रखती। आनन्द महल का जैसा नाम है बनावट भी वैसी ही सुन्दर है। इस ठौर पर विलासी राजाओं के विलास के अनेक उपयुक्त मकान बने हुए हैं। कहीं फुलवारी, कहीं फुहारे, कहीं गुप्त द्वार बने हुए थे, जहां से रानियां आ के बाग़ की सैर करती थीं। वे इस चतुराई से बनवाए गए थे कि रानियां बाहर की सब वस्तु भली प्रकार निहार सकती थीं। इस इमारत की बनावट बड़ी चतुराई से बनाई गई थी। भीतर से रानियां सब कुछ बाहर की चीजें देख सकती थीं, पर बाहर वाला उन्हें नहीं देख पाता था। अर्क किले के एक एक घर में ऐसी कारीगरी बनी हुई है कि जो जगत् में बीजापुर की कीर्त्ति को सँम्भाल रही है। यह वही किला है जिसमें नाबालिग़ सुलतान इस्माइल के विरोध में मन्त्री कमाल खां गुप्त सलाह करने गए थे, पर अपने ही प्राण गवां आए। इसी किले के अन्दर अनेक ऐतिहासिक बातें हो चुकी हैं, जैसे चांद सुलताना इसी किले में अपना दरबार करती थी। मन्त्रियों ने सलाह करके उन्हें कैद कर सितारे निकाल दिया था। इसी ठौर में विलासप्रिय महमूद अपनी प्यारी नायिका रम्भा के प्रेम आनन्द में समय बिताते थे। आदिलशाही नवाबों के इसी ठौर में न जाने कितने लड़ाई झगड़े हुए हैं, और यहां ही से उस वंश की भी समाप्ति हुई। विजयी औरङ्गजेब के चरणों पर यहां के सुलतान सिकन्दर ने हार मान के अपना ताज रख दिया था। चाहे अब यहां की सम्पूर्ण विभव ध्वंस हो गई हो तो भी पुराने समय की एक उत्तम साक्षी इन वर्तमान खंडहरों से पाई जाती है।

इस समय बीजापुर में जो टूटी फूटी इमारतें वर्तमान हैं, उन सभों में से "बोल" अथवा "गोल" गुम्बज ही प्रधान है। यह सुलतान महमूद की समाधि है। इतना बड़ा गुम्बज उस नगर में क्या, शायद पृथ्वी भर में दूसरा न होगा। गुम्बज की बाहरी ऊंचाई १९८ फ़ीट की है और जिस चौखूंटी दीवार पर यह बनाया गया है उसको एक एक ओर की दीवार की लम्बाई १३५ फ़ीट की है। इमारत चौखूंटी है जिसकी नाप १८२२५ फ़ीट है। रोम नगर में जो पन्थियन है यह उससे भी बड़ी है। बाहर चार कोनों पर चार मीनारें हैं, जिसमें नीचे से ऊपर तक बराबर झरोखे बने हुए हैं। इन मीनारों में सात खन हैं। इसके अन्दर ऊपर तक जाने के लिये सीढ़ी बनी हुई है। इन पर चढ़के छ खन पर जाने से छत पर पहुंच जाते हैं जहां से चारों ओर दूर दूर की शोभा दिखाई देती है। उस पर से धर्ती पर खड़े हुए मनुष्य भुनगे से जान पड़ते हैं। इस गुम्बज के अन्दर जो ज़रा सा भी कोई बोलता है तो चारों ओर उस इमारत भर में वह शब्द ऐसा गूँज जाता है मानो हजारों मनुष्य के बोलने का भ्रम हो जाता है। दक्षिणवाले दरवाजे से जहां समाधि है वहां का रास्ता है। वहां सुलतान के गोर के पास ही बेगम और शाहज़ादों की भी गोर हैं। दक्षिण ओर के द्वार के पास ही एक पतथर की पटिया पर फारसी अक्षरों में लिखा हुआ है कि सुलतान महमूद का हिजरी सन् १०६७, अर्थात् ईसवी सन् १६५६ में, देहान्त हुआ था। दक्षिण की ओर जो द्वार है उसके ऊपर लोहे की संकल में एक बहुत भारी पत्थर लटक रहा है। लोगों को ऐसा गुमान था कि इसी के गुण से इस बड़े गुम्बज पर बिजली नहीं गिर सकती। एक बेर इसी गुम्बज पर बिजली गिर भी चुकी है तोभी लोगों के जी से वह पहिला अनुमान नहीं टसकता।

गोल गुम्बज के बाद ही "इब्राहिम रोज़ा" अर्थात् इब्राहिम बादशाह की कबर और मसजिद बनी हुई है।

इब्राहिम रोज़ा

शहरपनाह की पश्चिम दीवार से सटा हुआ इब्राहिमशाह का रोज़ा है। गोल गुम्बज की जैसी सीधी सीधी बनावट है, इब्राहिम रोजे में वैसीही अनेक प्रकार की सुन्दर कारीगरी है। इसकी कबर, मसजिद, बगीज़ा और मीनार का दूर से बड़ा सुन्दर दृश्य मालूम होता है। मुग़लों ने जब बीजापुर पर चढ़ाई की और इस पर उनकी अमलदारी बैठ गई तो उस समय यह रोज़ा भी उन्हीं लोगों के अधिकार में आगया था। उस समय मालिक मैदान नामी तोप के गोलों से इस मीनार को बहुत कुछ हानि सहनी पड़ी थी। आज कल बहुत कुछ बिगड़ी हुई जगहों की फिर से मरम्मत हो चुकी हैं। इन बड़ी बड़ी पत्थरों की इमारतों के नकाशी के कामों को देख सुन लोगों के चित्त में बड़ा ही कुतूहल और विस्मय होता है कि न जाने क्योंकर कितने कारीगरों ने कितने दिनों में इन्हें बनाया होगा, और न जाने कितने रुपए इन इमारतों के बनाने में खर्च पड़े होंगे। इब्राहिम रोजे के एक जगह पत्थर पर फारसी अक्षरों में लिखा हुआ है—मालिक सन्दाल ने बड़े खर्च और मेहनत से यह कबर और इमारत बनवाई थी। इनके बनवाने में डेढ़ लाख नौ सौ हून खर्च हुआ था। एक एक हून का दाम अगर सात सात शिलिङ्ग भी मान लिया जाय तो ५२८१६ पाउण्ड होता है। एक मोटा हिसाब लगाने से साढ़े पांच लाख रुपए होते हैं। पर शायद इतने रुपए तो खाली गुम्बज ही के बनवाने में खर्च हो गए होंगे। सारी इमारत के बनवाने का खर्च नहीं है। सारी इमारत के बनवाने में एक करोड़ रुपए से कम न खर्च हुआ होगा, बल्कि कुछ अधिक ही हुआ होगा।

६५३३ रेजे रोज काम करते थे और ३६ वर्ष ११ महीने ११ दिन में बन के तैयार हुआ था। इन लोगों की जो गिनती लिखी गई है वह शायद कारीगर, राज मिस्त्री प्रभृति ऊंचे दर्जे के कारीगरों की गिनती होगी। इनके अलावा गरीब मजूरे मजदूरिनियों को अन्न वस्त्र देके काम अवश्य ही लिया गया होगा। बिना ऐसा किए ऐसी इमारतों का बनना सम्भव न था। यह मुसलमानों की एक अनोखी चाल है कि अपने जीते जी अपने लिये कबर बनवा छोड़ते हैं। हिन्दुओं में तो ऐसी प्रथा है कि जब तक जीते हैं तबही तक सब कुछ, मरने के उपरान्त तो अपने मृतशरीर को जला के भस्म कर डालते हैं और उस राख को भी लुप्त कर देने की इच्छा रखते हैं।

अली रोजा

मुसलमान जाति अपने भवन से बढ़ के अपनी समाधि गृह को अच्छा सँभाल के बनवाती है। सुलतान महमूद के लड़के अली आदिल शाह ने गोल गुम्बज के समान अपनी कबर को तैयारी से बनवाया था। उनकी इच्छा थी कि मेरे समाधि मन्दिर की परछांही मेरे पिता के समाधिमन्दिर पर पड़े। परन्तु ईश्वर की यह इच्छा न थी। मकान बनने भी न पाया कि उनकी मृत्यु हो गई। अस्तु, अधूरे मकान ही में उनको गोर दी गई। अभी तक वही अधबना उनका कबरवाला मकान दिखाई देता है। उसी अधूरे मकान का नाम "अलीरोजा" है। पर अधबना मकान होने पर भी बहुतेरे तैयार भवनों से चढ़ा बढ़ा है। जैसी उनके जी में इस समाधि बनवाने की इच्छा थी, अगर बन के तैयार हो जाती तो सचमुच गोल गुम्बज से इसकी सज धज चढ़ बढ़ के होती और अली भी अपनी इच्छा पूरी कर अपने जी के सुख से मरते।

इस अधबनी मसजिद के एक कोने में चमकदार सुन्दर नकाशियों के हरे पत्थरों से बनी हुई एक कबर है।

सुलतान सिकन्दर की कबर

सुलतान सिकन्दर की कबर और और लोगों की कबरों के बीच में बनी हुई है। इसके उत्तर की ओर मक्का फाटक से किले में जाने की राह में पास ही पास दो सुन्दर कबरें बनी हुई हैं। दोनों कबरों के पास ही पास होने के कारण इन कबरों का नाम दो बहिनें पड़ा हुआ है, पर कहते हैं कि एक में दूसरे अली के प्रधान मन्त्री खवाश खाश और दूसरी में उनके उस्ताद अब्दुलकादिर की लाश गड़ी हुई है।

औरङ्गजेब की बेगम की कबर

इन कबरों से कुछ दूर दीवारों से घिरे हुए एक बगीचे के बीच में औरङ्गजेब की बेगम की एक कबर है। दिल्ली से सुफेद सङ्गमरमर मंगवा के यह कबर बनवाई गई थी। ऐसे पत्थर बीजापुर के इलाकों में नहीं मिलते। कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि यह औरङ्गजेब की बेगम नहीं वलिक उनकी लड़की की कबर है। इस बारे में ऐसी किम्वदन्ती है कि जब औरङ्गजेब ने महाराष्ट्र-कुल-कमल-दिवाकर वीर-शिरोमणि महाराज छत्रपति श्रीशिवाजी को अनेक प्रकार से समझा बुझा के दिल्ली बुला के कुछ दिन तक उन्हें दिल्ली में रक्खा था, उसी समय शाहजादी से उनकी आंख लग गई थी। अगर शिवाजी मुसलमानी धर्म स्वीकार कर लेते तो बादशाह खुशी से शिवाजी को अपनी लड़की व्याह देते। पर शिवाजी तो कट्टर हिन्दू थे, अस्तु व्याह न हुआ और लड़की क्वारी ही मर गई और बीजापुर ही में उसको गोर दी गई *।

इसके सिवाय मोती गुम्बज, बारह पावे की गुम्बज प्रभृति बहुत से कबरस्तान हैं, जिन्हें लेख बढ़ जाने के ख्याल से न लिखा।

आसार महल

इसे सुलतान महमूद ने बनवाया था। औरों

* इस विषय पर Rev. Hobert Counter ने एक छोटी सी पुस्तक अंगरेज़ी में लिखी है।

की अपेक्षा अभी तक यह टूटा फूटा नहीं है। पहिले यह कचहरी के लिये बना था, इसीसे इसका नाम "अदालत महल" भी रक्खा गया था। इसपर से महल में जाने आने के लिये ऊपर से पटावदार छत्त पटी हुई थी। कुछ दिन बाद जब कचहरी के लिये एक दूसरा मकान बन के तैयार हुआ तो यह दूसरे काम में आने लगा। काल पाके मुहम्मद के मूछों के दो बाल इसमें ला के रखते ही इस इमारत का भाग्य खुल गया। इसपर तब से कोई आफ़त भी न आई। अदालतवाला महल तो टूट फूट गया, पर यह अभी तक बना हुआ है। इसकी उंचाई १३५ फ़ीट की है और इसमें दो खन हैं। नकाशीदार लकड़ी की छत चार मजबूत खम्भों पर है। दूसरे खन में कई एक कोठरियां हैं। इन्हींमें से एक कोठरी में मुहम्मद साहब के मूंछों के बाल धरे हुए हैं। अक्सर यह घर बन्द रहता है। साल में किसी एक दिन इसके भक्तों को इसके दर्शन होते हैं। और और घरों में से किसीमें चीन के खिलौने, किसीमें कालीनें, किसीमें मखमली मसनद आदि बहुमूल्य वस्तुएं धरी हुई हैं। इन मकानों की दीवार और छत्तों पर भांति भांति के बेल बूटे, तसबीरें लिखी हुई हैं। एक मकान में महमूद बादशाह की सुन्दर तसबीर बनी हुई थी, परन्तु गवांरों के हाथ पड़ के नष्ट भ्रष्ट हो गई है। योंहीं और और तसबीरों का भी हाल है। आसार महल में बीजापुर के बारे में कई एक हाथ के लिखे हुए लिखत थे, पर कुछ तो समय बली ने नष्ट कर दिए और कुछ दूसरी जगह भेज दिए गए।

मेहतर महल

यह एक नामी महल है। इसमें बड़ी उत्तम उत्तम नकाशी के काम बने हुए हैं, पर इसके बारे में जितने मुंह उतनी तरह की बातें सुनाई देती हैं। कोई तो कहता है कि किसी एक मेहतर के नाम से इस महल का नाम मेहतर महल पड़ा है। उसका किस्सा यों कहते हैं कि इब्राहिम बादशाह को कोढ़ हो गया था। बादशाह ने अनेक उपाय किए, पर फल किसीसे कुछ न हुआ। एक दिन एक ज्योतिषी ने प्रश्न विचार के बताया कि सवेरे सोके उठते ही जहांपनाह जिसका मुंह पहिले पहिल देखें उसे धनरत्न से निहाल करदें तो उनका रोग आराम हो जायगा। एक रोज बादशाह को रात को भरपूर नींद न आई, सवेरे ज्यों हीं उठे त्यों हीं सामने एक मेहतर दिखाई दिया। उसीको बादशाह सलामत ने बहुत कुछ धन दिया। उसी धन से उसने यह महल बनवाया था। कोई कोई ऐसा कहते हैं कि फकीरों के मेहतर अर्थात् महन्त याने मुखिया ने मसजिद के सामने यह महल बनवाया था, इससे इसे मेहतर महल कहते हैं। किस्सा चाहे जो हो पर इस महल की बनावट बड़ी ही प्रशंसनीय है। इसके दो मंजिले के ऊपर वाली छत ऐसे अच्छे ढंग से बनी है कि पहिले तो उसकी बनावट ही एक अनोखे ढंग की है, दूसरे उसमें जो काम किया हुआ है वह एक से एक बढ़ा चढ़ा हुआ है, जिसे देख के बड़े बड़े अंगरेजी इञ्जीनियरों की बुद्धि भी चकरा जाती है। जैसे बेल बूटे लकड़ी पर अच्छे कारीगर बनाते हैं, वैसी ही नकाशी सुचतुर कारीगरों ने पत्थरों पर बनाई है। किसी नामी अंगरेज ने कहा है कि ऐसी उत्तमता से यह मकान बना है कि कायरो के नामी मकानों से किसी बात में घट के नहीं है।

जुमा मसजिद

जुमामसजिद के जोड़ की दक्षिण में दूसरी कोई मसजिद नहीं है। इसकी बनावट बड़ी ही सुन्दर है। इसमें बड़ी सुघराई से और कारीगरी से काम बने हुए हैं। यह मसजिद एक मनुष्य की बनवाई हुई नहीं है। आदिलशाह से लेके औरङ्गजेब तक बादशाहों ने अपने अपने समय तक इस मसजिद में कुछ कुछ काम बनवाए हैं, तौ भी इसका काम पूरा न होने पाया। बाहर के मीनार के बिना यह मसजिद दुखी सी लगती है। भीतर घुसते ही एक चौखूटा आंगन मिलता है जिसके तीन ओर

तो दालान और कोठरियां हैं और बीच आंगन में फ़ौवारा है। मसजिद के चारों ओर सुन्दर खम्भों पर रङ्ग बिरङ्गे सुन्दर महराब, लम्बी दालानें, और गुम्बज बने हुए हैं; पर सब सुन्दर बनावटदार चमचमाते गच पर एक एक आदमी के बैठने के लिये लकीरें खिंची हुई हैं, जो लगभग ४००० मनुष्य के बैठने लायक होंगी। मेहराबों पर दीवान हाफ़िज़ की शेर खुदी हुई हैं, जैसे कि

"जीवन का कोई भरोसा नहीं है। यह क्षण स्थायी है"। "क्षणभंगुर संसार में शान्ति नहीं है"। "संसार इन्द्रियसुख का भण्डार है"। "मनुष्य देह अमूल्य पर अनित्य है"।

उन्हीं लेखों से मालूम होता है कि सन् १६३६ (१०४५) में सुलतान महमूद की आज्ञा से उसके सेवक मलिक याकूब ने इस मेहराब को बनवाया था।

इनके सिवाय मालिक जहान, मालिक सन्दाल, अन्दू बुखारा, प्रभृति न जाने कितनी ही मसजिदें हैं जिनका कहां तक बयान लिखा जाय। बीजापुर कबर और मसजिदों से भरा पड़ा है।

मक्का मसजिद

अर्क किले के बीच में आनन्दमहल के पास मक्का मसजिद बनी हुई है। मक्के की मसजिद की यह नकल बनी है, इसीसे इसका नाम मक्का मसजिद रक्खा गया है। यह छोटी सी अच्छी मसजिद है, मानो एक सुन्दर सा खिलौना बना हुआ है। ऐसी किम्वदन्ती सुनाई देती है कि चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में किसी एक नामी पीर ने इस मसजिद को बनवाया था। उस समय बीजापुर हिन्दू राजाओं के आधीन था। पीर ने अपने दल बल के साथ वहां आके अपना अड्डा जमाया। हिन्दू राजाओं ने जी से चाहा कि इन लोगों को यहां से भगा देना चाहिए। जब अपने बल से न भगा सके तब उन लोगों ने अपने जी में यह विचार किया कि ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे इन्हें किसी तरह की रसद न मिले तो आपही भूख के मारे दुखी हो यहां से निकल भागेंगे। वहां की प्रजामात्र से ऐसा करार करवा लिया कि कोई किसी तरह की खाने पीने की वस्तु पीर या उनके साथियों को न दे। कई दिनों तक जब पीर के साथी मारे भूख के बिकल होने लगे तब वे लोग एक हिन्दू को गौ को पकड़ लाए और उसीको हत्या करके उन्होंने अपनी भूख बुझाई। इसी बहाने से हिन्दू मुसलमानों के बीच घोर झगड़ा हुआ। हिन्दूलोग पीर को पकड़ के राजा विजनराय के पास ले गए। उनसे पूछने पर वे कहने लगे कि हमलोगों ने पेट की प्रबल आग बुझाने के लिये यह हत्या की है, पर अगर कहिए तो हम मंत्र के बल से इस गौ को फिर से जिला दें। यह कहके उसकी हड्डियां सब जमा करके पीर ने अपने मंत्रबल से उस गौ को फिर से जिला दिया। यह देख राजा ने अपने जी में बड़े ही चकित हो और प्रसन्न हो पीर साहब को रहने की आज्ञा दी और उनके खाने पीने का सुप्रबन्ध कर दिया। पीर साहब को राजा की ओर से जो जमीन मिली थी उसी पर उन्होंने मक्का मसजिद बनवाई और उसी मसजिद के पास ही पीर की कबर बनवाई गई।

गोरख इमली

बीजापुर में इतनी अधिक मीनारें, मकबरे, कबरें और मसजिदें हैं कि जिनका वारापार नहीं है। राजमहल के अन्दर इमली के दो प्रसिद्ध वृक्ष हैं। वे दोनों वृक्ष गोरख इमली के नाम से प्रसिद्ध हैं। उस जमाने में जिस किसीको फांसी की सज़ा मिलती थी वह इन्हीं पेड़ों में से किसी एक पेड़ में लटकाया जाता था, इसीसे ये दोनों पेड़ आज तक जग में प्रसिद्ध हैं।

आसाद बेग

जिस समय बीजापुर के भले दिन थे, उस समय इसके विभव को देख देख के अनेक देखने

वालों ने इस स्थान के बारे में इतिहास लिखा है, परन्तु उन सभों में से आसाद बेग ने जो इतिहास लिखा है वह अच्छा लिखा गया है, इससे उन्होंके लिखे इतिहास के यहां संक्षेप में लिखते हैं। बीजापुर का इतिहास लिखने के पहिले इस बात के जान लेना चाहिए कि आसाद बेग कौन थे और किस समय में उन्होंने बीजापुर का हाल लिखा था। सन् १६०० के कुछ ही बाद जिस समय में इब्राहिम आदिलशाह और सम्राट अकबर शाह के बीच एक सन्धि हुई थी, उसी मौके पर सम्राट के कुमार दानियल के साथ इब्राहिम ने अपनी लड़की के विवाह की बात चीत ठीक की थी। उसी समय आसादबेग अकबर शाह की ओर से इस विवाह में बीजापुर आए थे। वहां उनकी पूरी मिहमानदारी हुई और बिदाई में भी बहुत कुछ देके राजकुमारी के साथ ही वे बिदा किए गए थे। इन्हीं बरातियों के साथ इतिहास लिखनेवालों में प्रसिद्ध लेखक फ़रिश्ता भी आए थे। बीजापुर के बादशाह ने अकबर शाह के लिये बेशकीमती जवाहिरात और बढ़िया बढ़िया कई एक हाथी भेजे थे। उन हाथियों में से एक ऐसा हाथी था जो नित्य दो मन शराब पिया करता था, जिसमें बड़े झगड़े बखेड़े करने पड़ते थे। इस शादी में शाहजादी राजी न थीं, इसीसे भीमा नदी तक आके न जाने क्या जी में आया कि उलटी पीछे लौट गई। एक रोज़ रात को ऐसी तेज़ आंधी आई कि तम्बू कनात उखड़ उखड़ा के टूट फूट गया था। सारा लश्कर तितर बितर हो गया, लोग भी कहां के कहां चले गए। उसी मौके में शाहज़ादी भी न जाने कहां चल दी। दूसरे दिन सवेरे खोज खाज के लोग फिर उन्हें ठिकाने ले आए और शाहज़ादे दानियल के डेरे में शाहज़ादी को आसादबेग जाके पहुंचा आए। बीजापुर की छटा देख आसाद बेग ऐसे रीझे कि उन्होंने स्वयम् उस स्थान की प्रशंसा यों लिखी—बीजापुर में गगन से बात करते हुए सुन्दर सुघड़ राजभवन और अटारियां नगर की शोभा बढ़ा रही थीं। हाट बाट में सुन्दर सुहावन मनभावन द्रव्यों से प्रायः सजी सजाई दूकानें नगर की शोभा बढ़ा रही थीं। प्रति दूकानों के आगे एक एक हरे भरे छायेदार वृक्ष हैं जिनके मधुर मन्द शीतल पवन के झकोरों से आते जाते पथश्रान्त बटोही शान्त होते थे। बीजापुर के बजार की चौड़ान लगभग ६० हाथ के थी और वह बजार दो कोस की लम्बान में बसा हुआ था। उस बजार में जैसी सुन्दर सुघड़ चीजें सहज में मिलती थीं प्रायः उस मेल की और ठौर सहज में नहीं मिलती थीं। किसी दूकान में हीरा, मोती, मानिक, पन्ना आदि रत्न जगमगा रहे थे, कहीं सूरज चांद से सोने चांदी के सुघड़ आभूषण शोभा दे रहे थे। कहीं बजाजे में भांति भांति के देश देशान्तरों के सुन्दर वस्त्र धरे थे। योंही मनोहारों की दूकानों में अनेक मनहोरी वस्तु, पसरहट्टे में किराने और ठठेरों की टोली में अनेक प्रकार के बासन, रंगरेजों की दूकानों पर अनेक रङ्ग बिरङ्गी चीजें, धीर वीरों के लिये भांति भांति के अस्त्र शस्त्र चमचमा रहे हैं। कहां लों कहें, यावत् वस्तुएं जिसकी असंख्य संख्या है, बीजापुर के बजार की शोभा बढ़ा रही थीं। निदान कहां तक लिखें, जो जो वस्तु बीजापुर में मिलती थी, वह दूसरे ठौर सहज ही नहीं मिलतीं। ठौर ठौर संगीतविद्या में निपुण गायक और नर्त्तकीगण भूलोक में गन्धर्वलोक का सा आनन्द दिखाया करते थे। नगरवासी जो जिस अवस्था में थे उसी अवस्था में अपने को धन्य और परम सुखी और भाग्यवान मानते थे। अनेक शोभा को लिख अन्त उन्होंने फारसी भाषा में लिखा है—

"अगर बहिश्त अन्दर (?) ज़मीनस्त,
हमीनस्तो ओ हमीनस्तो हमीनस्त"

पर अब पाठक यह न समझें कि अभी भी बीजापुर वैसाही हरा भरा अपनी शोभा सम्पादन कर रहा है। नहीं कदापि अब वह बीजापुर पुराने

बीजापुर सरीखा नहीं है। अब तो वे बातें इतिहासों ही में रह गई हैं।

बीजापुर के मातहत अनेक छोटी छोटी बस्तियां थीं, जैसे शाहपुर, जोरपुर, इब्राहिमपुर, नौरसपुर, अल्लापुर, अपनापुर इत्यादि अनेक पुर बीजापुर के अन्तर्गत बसे हुए उसकी शोभा सम्पादन कर रहे थे। पर काल बली ने अब उनकी कहानी सी छोड़ रक्खी है, क्योंकि "काल नाम नहीं खाय"। अब तो शाहपुर, जोरपुर, पीर अमीन की दरगाह, अफ़जलपुर की गिरी पड़ी निशानी रह गई हैं। पहिले तो बीजापुर और इसके आस पास १० लाख आदमियों की बस्ती थी।

सन् १६३५ ईसवी में जब मुगलों ने बीजापुर पर चढ़ाई की और महमूद बादशाह ने उनकी चढ़ाई को रोका, तो उस समय शाहपुर को अनेक प्रकार की हानि सहनी पड़ी थी। और जब बादशाह को किले के बाहर रहना कठिन हुआ तब विवश शाहपुर की बस्ती उजाड़ हो गई।

अफ़ज़लपुर

जिन लोगों ने शिवाजी की जीवनी पढ़ी है उन्हें अफ़ज़ल खां की कथा मालूम है। इस अफ़ज़लपुर में अफ़ज़ल खां रहा करते थे। इस ग्राम में लिखने योग्य कोई विशेष बात नहीं है, सिवाय इसके कि नवाबी खानदान की बहुत सी कबरें एक ही जगह में एक बनावट की बनी हुई हैं। इन कबरों के बारे में लोग ऐसा कहते हैं कि जितनी कबरें हैं सब औरतों ही की हैं। ये ग्राम और इमली के पेड़ों की झुरमुट के बीच में बनी हुई हैं। इन्हीं पेड़ों की झुरमुट में एक छोटासा तालाब है जिसका पानी अब बिलकुल सूख गया है। एक एक कतार में सात सात कबरें हैं और कबरों की ११ कतारें हैं। ऐसी कहतूत चली आती है कि अफ़ज़ल खां ने जिस समय शिवाजी पर चढ़ाई की थी, उस समय ज्योतिषियों ने अफ़ज़लखां से स्पष्ट कह दिया था कि अब की आप लौट के घर न आवेंगे। इस कहने पर उन्हें कुछ ऐसा कड़ा विश्वास हो गया था कि वे अपने घर गृहस्थी का पूरा प्रबन्ध कर गए थे। उनकी ७७ बेगमें थीं। उनके बारे में उन्होंने सोचा कि यदि हम न लौटें तो इन बिचारियों की क्या गति होगी। यह सोच उन्होंने अपनी कुल बेगमों को एक साथ उसी तालाब में डुबो दिया और तालाब के किनारों पर उतनी ही कतारें बनवा दीं और आप बेफिकर हो शिवाजी पर चढ़ दौड़े। अब न जाने यह बात कहां तक सच्ची है। पर एक ही जगह एक ही ढंग की कबरों को देख के कुछ कुछ इस बात पर विश्वास तो होता है, क्योंकि नहीं तो एक ही जगह एक ही सी इतनी कबरें क्यों बनतीं? इससे जी में आता है कदाचित् बात ठीक ही हो।

नौरसपुर

शाहपुर के पश्चिम नौरसपुर है। बीजापुर छोड़ के दूसरे इब्राहिम ने नौरसपुर बसाया था और इसीको अपने राज्य की राजधानी बनाया था। इसीसे सन् १६०० ईसवी में वहां बहुतेरी अच्छी और बड़ी बड़ी इमारतें बन गई थीं। बीजापुर से यह स्थान इसलिये रमणीक है कि यहां सुन्दर सुहावने हरे भरे जङ्गल पहाड़ हैं। चाहे जो हो, पर इब्राहिम की लालसा पूरी न हुई, क्योंकि किसी ज्योतिषी ने जो पहिले कह दिया था कि नौरसपुर को अगर राजधानी बनाओगे तो वह तुम्हें फलवान न होगा। विवश इब्राहिमशाह को नौरसपुर छोड़ना पड़ा, पर वहां अनेकों ने अच्छी हवेलियां बनवाली थीं। जी बहलाने की वहां कई एक अच्छी जगह थीं। इस समय एक टूटी फूटी हवेली पड़ी हुई है। किसी समय में वह बड़ी सुन्दर हवेली थी जिसे "सङ्गीत महल" कहते थे। बीजापुर में जितनी नामी इमारतें थीं, यह उनमें से किसीसे किसी बात में घट के न थी। उसके सामने सुन्दर सुन्दर फौवारों, हौज़ों और स्वाभाविक पानी के झरनों ने उस स्थान को बड़ा ही रमणीक बना दिया था,

क्योंकि स्वाभाविक दो नदियां दोनों ओर से मानों उस मकान को लपेट रही थीं। थोड़ी ही दूर पर एक छोटी सी पहाड़ी अपनी न्यारी ही शोभा दे रही है। इन सब स्वाभाविक शोभा के बीच में होने से उस मकान की बड़ी सुन्दर छटा हो गई थी।

बड़े अचरज की बात है कि बीजापुर के चौतरफ़ा तो बीहड़ सुनसान सरपट उदास मैदान पड़ा हुआ है, पर न जाने इतने टुकड़े में ऐसी सुन्दर छटा क्यों कर हो गई? यह सिवाय विश्वम्भर की महिमा के और क्या कहा जाय! बीजापुर के चौतरफ़ा मरुभूमि की ऐसी सूखी धर्ती देख यह अचरज होता है कि इतने बड़े राज की यह राजधानी क्यों कर मानी गई। कदाच यह हो कि बीजापुर के अन्दर जल का अधिक सुपास है। इसका बाहरी हिस्सा जैसा सूखा है वैसेही इसके अन्दर कई एक अच्छे जल के स्थान हैं। जब कभी किसी तरह की बदअमली होती थी तो इन्हीं जलाशयों से वहां वाले अपना अपना गुजारा करते थे। उत्तर दिशा की धर्ती में उपज नहीं होती इसलिये वैरियों को इधर आक्रमण करने का अच्छा सुबीता है। इसलिये वह ओर भली प्रकार रक्षित है। दक्षिण दिशा से पुरवासियों के लिये गल्ला और पानी का प्रबन्ध हो सकता है। नगर के अन्दर जल का अधिक सुबीता है। नगर के अन्दर ताज बावली आदि कई अच्छे स्थान हैं। सिवाय इसके बेगमताल आदि और भी कई अच्छे जलाशय हैं।

कार्तिक प्रसाद।





राजा रविवर्म्मा कृत कृष्णविरहिणी राधिका

सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

भाग ३] अगस्त १९०२ ई० [संख्या ८

विविध वार्ता।

अंग्रेज़ी अख़बारों के पढ़ने वालों में कदाचित् ही कोई ऐसा होगा जो डाक्टर शरत् मलिक के नाम से परिचित न हो। ये बंगाल के रहने वाले हैं, परन्तु इस समय इङ्गलैण्ड में डाक्टरी कर रहे हैं। केवल यही बात उनकी योग्यता से परिचित करा देने के लिये काफ़ी होगी कि एक देशी भाई विलायत जाकर अंग्रेजी रीति से चिकित्सा करके मान के साथ धन उपार्जन कर सकता है। परन्तु जब हम यह देखते हैं कि डाक्टर महाशय वहां साधारण डाक्टरों में नहीं गिने जाते, वरन् अपने काम में वे चुने हुए लोगों में गिने जाते हैं और साथ ही अपने देशहित के कामों में सहायता देते रहते हैं, तो हमें उनके उच्च श्रेणी में गिने जाने में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता। अधिक दिन नहीं हुए कि डाक्टर महाशय कई बातों की जांच के लिये भारतवर्ष, चीन और जापान आदि देशों में यात्रा को निकले थे। अब इस समय वे इंगलैण्ड में विराजमान हैं। उन्होंने एक चिट्ठी के उत्तर में, जोकि महाराष्ट्र देश के एक महाशय ने लिखी थी, निम्नलिखित सम्मतियां दी हैं—

[१] विलायत यात्रा के सम्बन्ध में डाक्टर महाशय लिखते हैं कि हमारे युवकों को उस समय तक विलायत यात्रा का साहस न करना चाहिये जब तक वे निम्नलिखित बातों का पूरा पूरा प्रबन्ध न करलें—

(१) साधारण व्यय का प्रबन्ध।

(२) असाधारण व्यय का प्रबन्ध।

(३) कम से कम एक वर्ष के खर्च के लिये विलायत के किसी बङ्क में पूर्वही रुपया जमा करादें, जिसमें किसी विशेष अवसर पर उनको परदेस में कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

केवल उन्हीं लोगों को विलायत में विद्योपार्जन आदि के लिये जाना चाहिए जिनका आचारण अनुकरणीय और जिनकी योग्यता असाधारण हो, क्योंकि साधारण श्रेणी के लोग वहां जाकर कई प्रकार की बुराइयों में फँस जाते हैं, जिससे अपना द्रव्य नष्ट करने के अतिरिक्त विदेशियों को इस बात का अवसर देते हैं कि वे हमारे विषय में हानिकारक सम्मति स्थिर करें।"

[२] दूसरी बात यह है कि हमारे युवकों को इङ्गलैण्ड ग्रैर जापान में से किस स्थान को विद्योपार्जन के लिये चुनना चाहिए। डाक्टर मलिक इङ्गलैण्ड के ग्रागे जापान को पसन्द करते हैं ग्रैर इसके निम्न लिखित कारण बताते हैं—

जापान पूर्वी देश है इस कारण इङ्गलैण्ड की ग्रपेक्षा जापान से हमारा सम्बन्ध स्वभावतः ग्रधिक है। यह सोचना कि जापान ने केवल पश्चिमी बातों की नकल करके सब उन्नति प्राप्त की है सर्वथा झूठ ग्रैार ग्रप्रमाणिक है। इसमें सन्देह नहीं है कि जापान ने कई बातों का पश्चिमी लोगों से सीखा है, परन्तु जा कुछ उन्नति उसने की है वह उसके साहस ग्रैार उद्योग का फल है। यह प्रश्न हो सकता है कि जापान ग्रभी उठ रहा है, इसलिये यह देश हमें ऐसी शिक्षा नहीं दे सकता जैसी कि योरप के लोग दे सकते हैं। इसका उत्तर यह है कि पहिले तो हमने ग्रभी उतनी उन्नति ही नहीं की है। हमें ऐसी चीज़ों के सीखने की ग्रावश्यकता जिसे जापान नहीं सिखा सकता, उस समय हो सकती है जब हम उन्नति की सीढ़ी पर कुछ दूर चढ़ जांय। यद्यपि बहुत सी बातों में जापान पश्चिमी जातियों से पीछे है, तथापि यह बात हमलोगों को याद रखनी चाहिए कि कई ऐसी बातें भी हैं जिनमें दूसरे लोग जापान का सामना नहीं कर सकते। यह बात सब लोगों को मालूम न होगी कि ग्रमेरिका ऐसे देश को भी ग्रावश्यकता पड़ने पर जापान से तारपीडो डोंगियाँ मोल लेनी पड़ीं, क्योंकि ग्रमेरिकावाले ऐसी ग्रच्छी तारपीडो डोंगियां नहीं बना सकते जैसी जापानवाले बनाते हैं। इन बातों के ग्रतिरिक्त ग्रैार देशों की ग्रपेक्षा जापान में रहने का खर्च थोड़ा पड़ता है। हमलोगों के लिये जापान में शिक्षा पाने के पक्ष में एक बात ग्रैार है। जापाननिवासी हमें मान की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि वे बैाद्धमत के ग्रनुयायी हैं ग्रैार बुद्धदेव का जन्म भारतवर्ष में हुग्रा था। ग्रंग्रेज़ लोग साधारणतः हमलोगों को ग्राधे जङ्गली समझते हैं। इन बातों से यह सिद्ध होता है कि हमलोगों में ग्रैार जापानियों में प्राकृतिक सम्बन्ध है। यदि हमारी इच्छा कभी भी किसी दूसरे देश में जाकर कुछ सीखने की हो तो हमें पहिले जापान का ध्यान कर लेना चाहिए। ग्रंग्रेज ग्रपने व्यापार का भेद किसीको बताया नहीं चाहते। इसीलिये इङ्गलिस्तान के कारख़ानों में किसी विदेशी को जाने की ग्राज्ञा नहीं मिलती।

[३] भारतवर्ष के धन को ग्रन्य देशों में जाने से रोकने के विषय में मिस्टर मलिक की यह सम्मति है-

(१) जो चीज़ें ग्रन्य देशों से ग्राकर यहां बिकती हैं उनको न खरीदा जावे ग्रैार उनके बदले यहां की बनी चीज़े ग्रधिक पसन्द कीजावें।

(२) यहां की बनी चीजें ग्रन्य देशों में बिकने के लिये भेजी जावें। दूसरी बात ग्रभी यहां के लिये कठिन है, इसीलिये डाक्टर साहब पहिली बात पर ग्रधिक जोर देते हैं। वे स्वयं विलायत में निवास करते हुए भी ग्रपने देश की बनी चीजों का ग्रधिक व्यवहार करते हैं।

डाक्टर महाशय की सम्मति के ग्रनुसार भारतवर्ष में निम्नलिखित प्रकार के कारखाने खोलकर लोगों को ग्रपने को तथा ग्रपनी जाति को लाभ पहुंचाना चाहिए।

(१) कपड़े के कारखाने, जैसे रुई का तैयार करना, सूत कातना, कपड़े बुनना, इत्यादि।

(२) शीशे के कारखाने।

(३) चमड़े के कारखाने।

(४) छपाई के कारखाने। विलायत में यह काम बहुत महँगा होता है। यदि विलायत के पुस्तकप्रकाशकों से ठीका किया जावे तो इसमें ग्रधिक लाभ हो सकता है।

ग्रन्तिम विषय डाक्टर साहब ने यह लिखा है कि विलायत का रुपया उधार लेकर हम लोगों को ग्रपने कारखानों में लगाना चाहिए। क्योंकि भारतवर्ष में ६) रु० सैंकड़े सूद पर रुपया मिलता

है, पर विलायत में बहुत कम सूद पर मिलता है। यदि किसीको ३॥) से ५) तक ब्याज मिल गया ते। वह अपने के। बड़ा भाग्यवान समझता है।

***

युनिवर्सिटी कमिशन की रिपोर्ट प्रकाशित हो गई है। उसमें बहुत से प्रस्ताव ऐसे किए गए हैं जिनसे उच्च शिक्षा के प्रचार में बाधा पड़ सकती है। हम आगामी संख्या में कमिशन ने जो मुख्य मुख्य प्रस्ताव किए हैं, उनका सारांश पाठकों के सूचनार्थ प्रकाशित करेंगे।

***

हमारे राजराजेश्वर श्रीमान, सप्तमएडवर्ड के राजतिलकोत्सव का आनन्द हमलोग जून मासही में मनानेवाले थे, परन्तु दैवदुर्विपाक से वह उत्सव न हो सका। श्रीमान् ने जून और जुलाई मास में जैसा शारीरिक कष्ट भोगा उसे स्मरण कर हृदय व्याकुल हो जाता था, परन्तु आज अत्यन्त आनन्द का दिन है कि यह उत्सव निर्विघ्न समाप्त हो गया।

***

हमको यह जानकर बड़ा सन्तोष हुआ कि इस वर्ष मुर्शिदाबाद में बंगला भाषा के ग्रन्थ-कर्ताओं और तत्वज्ञों की एक महती सभा होगी। इसमें बंगला भाषा के सम्बन्ध में अनेक बातें पर विचार किया जायगा। अभी से इस सभा की तय्यारियां हो रही हैं और ऐसी आशा की जाती है कि लगभग १००० प्रतिनिधि वहां उपस्थित हों। हमारी प्रार्थना है कि बंगला के सुविज्ञ लेखकगण इस बात पर विचार करें कि उनकी भाषा के ग्रन्थ देवनागरी अक्षरों में छपा करें। इस विषय पर हम पहिले भी लिख चुके हैं। हम लोगें का यह उद्योग होना चाहिए कि जहां तक सम्भव हो सके विभिन्नता के दूर कर एकता के फैलावें। यदि अभी भारतवर्ष की एक भाषा नहीं हो सकती ते। आर्य भाषाओं का एक अक्षरों में लिखा और पढ़ा जानता ते। सर्वथा सम्भव है। इस के होजाने पर सम्भव है कि आगे चलकर प्राकृतिक नियमों के अनुसार भारतवासियों की एक राष्ट्र भाषा भी होजाय। भूमण्डल पर जितने देश हैं सब में भाषा की उन्नति के साथ देश की उन्नति हुई है। दूर की बात जाने दीजिए, अभी थोड़े ही दिन हुए हैं कि अंग्रेजों और बूअर लोगें में सन्धि हुई है। अंग्रेजें के सदा से अपनी भाषा का पक्ष और अभिमान है और वे सदा उसके प्रचार में लगे रहते हैं। अंगरेजें की यह इच्छा थी कि ट्रांसवाल के स्कूलों में भी अंगरेज़ी भाषा का प्रचार होजाय। पर दूरदर्शी स्वदेशाभिमानी और स्वभाषाप्रेमी बुअर इस बात के कब स्वीकार कर सकते थे। अन्त में सन्धि में यही लिखा गया कि ट्रांसवाल के स्कूलों में डच भाषा भी पढ़ाई जाय। हमारे देशवासियों के इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। हमलोग ते। स्वार्थ में पड़कर सब बातों के भूल जाते हैं। हमारे देशहितैषियों के इस बात का उद्योग करते रहना चाहिए कि भारत-वासियों की एक भाषा होजाय, क्योंकि जब तक यह न होगा तब तक देश की उन्नति सम्भव नहीं है। देशोन्नति के तीन मुख्य कारण बताए जाते हैं, अर्थात् एक भाषा, एक धर्म्म और एक जाति। हमारे देश में सबसे अधिक सम्भावना प्रथम ही में सफलता प्राप्त करने की है। इसलिये हमारी प्रार्थना है कि बँगला तथा और और भाषाओं के प्रधान प्रधान लेखक गण इस प्रस्ताव पर विचार करें और ऐसा उपाय करें कि जिसमें पहिले एक अक्षरों का प्रचार हो जाय। हम अपने सहयोगियों से भी प्रार्थना करते हैं कि वे इस विषय पर अपने अपने पत्रों में लेख लिखें।

पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

सन् १२२७ (बङ्गला) बारहवीं आश्विन के। हमारे चरित्रनायक ने बङ्गालप्रान्त के ज़िला मेदिनीपुर के बीरसिंह नामक ग्राम में एक

दरिद्र ब्राह्मण के घर जन्म लिया। आगे चलकर हमारे चरित्रनायक ईश्वरचन्द्र नाम से प्रसिद्ध हुए।

ज्यों ज्यों हमारे चरित्रनायक बड़े होने लगे, त्यों त्यों बाल्यस्वभाव की चपलता के कारण अधिक उत्पात मचाने लगे। बाल्यावस्था में यह ऐसे उधमी थे कि इनके पड़ोसी सब इनसे बड़े ही तङ्ग रहा करते। यदि कोई धमकाता तो इनका क्रोध और भी बढ़ जाता था; जिस बात की जिद पकड़ते उसे बिना किए छोड़ना तो जानते हो न थे। परन्तु माता से ये बड़े डरा करते थे। माता यदि ज़रा भी घुड़कतीं तो शान्त होकर बैठ जाते थे। साथ ही इनकी गुणमयी माता के गुणों का भी इन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि इनके बाल्यावस्था के सब अवगुण गुणों में बदल गए। बाल्यावस्था में यह बड़े जिद्दी थे, अतएव बड़े होने पर वह बड़े दृढ़प्रतिज्ञ बन गए। जिस कार्य में हाथ डालते उसे बिना पूरा किए नहीं छोड़ते। सच है, माता के स्वभाव का सन्तान पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। जहां माता सुशिक्षिता गुणवती होती है वहां सन्तान भी तदनुरुप होता है। यदि ईश्वरचन्द्र की माता गुणवती न होतीं तो क्या सम्भव था कि उनकी बाल्यचपलता उन्हें भविष्यत में दृढ़प्रतिज्ञ बनाती? जब ईश्वरचन्द्र की पांच ही वर्ष की अवस्था थी तो उनके पिता ने उन्हें ग्राम की पाठशाला में बैठा दिया। वहां पर जाकर ईश्वरचन्द्र खूब मन लगाकर पाठ सुनते और जब तक पाठशाला ही में उसे याद न कर लेते घर नहीं आते थे। अतएव अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण तीन वर्ष में इस भावी महापुरुष ने पाठशाला की समस्त शिक्षा समाप्त की। इनके पिता कलकत्ते के एक नामी जमींदार के यहां ८) मासिक वेतन पर नौकरी करते थे। अतएव पुत्र को अङ्गरेज़ी शिक्षा देने की इच्छा से वे उन्हें कलकत्ते ले आए; परन्तु फिर उनकी सलाह पलट गई और ईश्वरचन्द्र को उन्होंने संस्कृत की शिक्षा देनाही स्थिर किया, और सन् १८२९ ईसवी की पहिली जून को नौ वर्ष की अवस्था में पुत्र को संस्कृत कालेज में भर्ती कर दिया। ईश्वरचन्द्र इस कालेज के व्याकरण की तीसरी श्रेणी में पढ़ने लगे। बालक ईश्वरचन्द्र ने यहां भी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि विद्यानुराग और सुशीलता से अध्यापकों को अपने ऊपर प्रसन्न कर लिया। अपनी श्रेणी में वह सब बालकों से प्रथम रहा करते थे, श्रेणी में किसी बालक से नीचे रहना वह अपना बड़ा अपमान समझते थे। इसी प्रकार से बड़े परिश्रम से विद्याध्ययन करते हुए छ मास के पीछे इन्होंने परीक्षा दी, जिसमें इनका नम्बर सबसे अव्वल रहा और इन्हें ५) मासिक वृत्ति मिलने लगी। ईश्वरचन्द्र के पिता बड़े गरीब आदमी थे। कुल ८) रुपया मासिक से बड़े भारी परिवार का खर्च चलाना पड़ता था। इस कारण हमारे चरित्रनायक को भी कभी कभी भोजन बसन में बड़ा कष्ट सहना पड़ता। कदाचित् पाठकगण पूछ सकते हैं कि ईश्वरचन्द्र को ५) मासिक वृत्ति मिलती थी, फिर वह कष्ट क्यों उठाते थे? क्या आप उत्तर सुना चाहते हैं? सुनिये। हमारे स्वाभाविक ही दयावान, परदुःखकातर महात्मा बाल्यावस्था ही में इस द्रव्य से अपने श्रेणी के दरिद्रतर बालकों की सहायता करते और आप आधा पेट भोजन कर घर के बने हुए मोटे कपड़े पहिरकर एकान्तचित्त से विद्याभ्यास करते थे।

ईश्वरचन्द्र ने ग्यारह ही वर्ष की अवस्था में व्याकरण श्रेणी का पाठ समाप्त कर साहित्य श्रेणी में प्रवेश किया। साहित्यश्रेणी के अध्यापक ने ईश्वरचन्द्र की इतनी कम उमर देख कर उन्हें साहित्यश्रेणी में भर्ती करना अस्वीकार किया। परन्तु जब ईश्वरचन्द्र ने परीक्षा देकर उस श्रेणी में पढ़ने की योग्यता सिद्ध कर दिखाई तो अध्यापक महाशय चकित रह गए और उन्होंने अति स्नेह से अपने शिष्य को पढ़ाना आरम्भ किया। हमारे दृढ़परिश्रमी चरित्रनायक ने पहिले वर्ष रघुवंश, कुमारसम्भव आदि ग्रन्थों का पाठ समाप्त कर परीक्षा

दी और उसमें सर्वोच्च स्थान पाया। दूसरे वर्ष माघ, भारवी, मेघदूत, शकुन्तला, उत्तररामचरित्र, विक्रमोर्वशी, मुद्राराक्षस, कादम्बरी, और दशकुमारचरित्र इत्यादि काव्यग्रन्थों को आद्योपान्त याद कर लिया और इस बार की परीक्षा में भी इन्हींका नम्बर सबसे अधिक रहा। साहित्य श्रेणी के अध्यापक और उस श्रेणी के बालक सब ईश्वरचन्द्र की सफलता देख कर दङ्ग रह गए। केवल इतना ही नहीं, वरन् इसी उमर में ईश्वरचन्द्र ने संस्कृत में बातचीत करने की योग्यता भी प्राप्त कर ली। शिक्षक महाशय भी अपने गुणी छात्र के गुणों पर मोहित से हो गए। वह प्रायः लोगों से कहा करते थे कि "ईश्वर करे यह बालक चिरजीवी रहे। आगे चल कर यह एक अद्वितीय मनुष्य होगा"।

अभी ईश्वरचन्द्र की अवस्था केवल १४ वर्ष ही की थी कि खोरपाई ग्राम के शत्रुघ्न भट्टाचार्य की आठ वर्ष कन्या दीनमयी से इनका विवाह हो गया। विवाह हो जाने के पीछे साहित्यश्रेणी का पाठ समाप्त कर पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ईश्वरचन्द्र ने अलङ्कार श्रेणी में पढ़ना आरम्भ किया और वर्ष ही भर में साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश और रसगङ्गाधर इत्यादि संस्कृत के अलङ्कार ग्रन्थ पढ़ लिये, तथा सदा की भांति इस बार की परीक्षा में भी यही प्रथम रहे।

इस समय के नियमानुसार बालकों को पहिले अलङ्कार, न्याय और वेदान्त पढ़ कर तब स्मृतिशास्त्र पढ़ना पड़ता था और स्मृतिशास्त्र की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर तब उन्हें जज-पण्डित की नौकरी मिल सकती थी। परन्तु ईश्वरचन्द्र ने अलङ्कारश्रेणी ही में पढ़ते समय कालेज के अध्यक्ष को दरखास्त भेज कर स्मृतिशास्त्र पढ़ने की आज्ञा प्राप्त करली।

विद्यालय की पढ़ाई समाप्त कर लड़के ला-कमेटी की परीक्षा देने की इच्छा से स्मृतिश्रेणी में भर्ती होते थे और दो तीन वर्ष तक बड़े परिश्रम से मनुसंहिता, मिताक्षरा और दायभाग इत्यादि का पाठ समाप्त कर उन्हें परीक्षा देनी पड़ती थी। इस परीक्षा में बिरला ही कोई छात्र उत्तीर्ण होता था। परन्तु हमारे चरित्रनायक ने छ ही महीने में इन ग्रन्थों का पाठ समाप्त कर परीक्षा दी और बड़ी उत्तमतापूर्वक उत्तीर्ण हुए। ईश्वरचन्द्र की इस सफलता से उनका यश मलयवृक्ष के सौरभ की भांति चारों ओर फैल गया। बड़े बड़े पण्डित जब यह सुनते कि सत्रह वर्ष के लड़के ने जज-पण्डित की परीक्षा पास की है, तो वे चकित हो जाते। अस्तु, थोड़े ही दिन पीछे त्रिपुरा के जज-पण्डित की जगह खाली हुई। ईश्वरचन्द्र ने यह पद प्राप्त करने की इच्छा से आवेदनपत्र भेजा। वहां इनके नौकरी की मञ्जूरी भी हो गई, परन्तु पिता की इच्छा न होने से इन्होंने यह पद ग्रहण न किया, और १९ वर्ष की उमर में वेदान्त पढ़ने लगे। इसके पीछे न्याय और दर्शनशास्त्र पढ़ कर परीक्षा दी, जिसमें इनका नम्बर सबसे प्रथम रहा और इन्हें १००) पारितोषिक मिला। ईश्वरचन्द्र से कालेज भर के शिक्षक लोग अति प्रसन्न रहते और विशेष कर वेदान्तश्रेणी के अध्यापक शम्भुचन्द्र वाचस्पति तो इनके स्नेहपाश में ऐसे बँध गए थे कि बिना इनके पूछे कोई काम ही नहीं करते थे। कारण यह था कि अतिवृद्धावस्था होने के कारण उठने बैठने तथा स्नानाहार इत्यादि करने में उन्हें अन्य किसी मनुष्य के सहारे की आवश्यकता पड़ती थी। अतएव ईश्वरचन्द्र ही सदा गुरु की सेवा में लगे रहते और हर घड़ी उनके साथ रहते थे। अपनी सेवा से उन्होंने वृद्ध गुरु को अपने वश कर लिया। गुरु जी भी ईश्वरचन्द्र की बुद्धिमानी से उन पर ऐसे प्रसन्न थे कि उनकी सलाह अति उत्तम समझते थे। एक दिन का वृत्तान्त है कि पण्डित जी ने ईश्वरचन्द्र से कहा "बेटा, मैं अति वृद्ध हो गया हूं, उठने बैठने के लिये हर समय एक मनुष्य के सहारे की आवश्यकता पड़ती है, इसलिये मेरा विचार है कि एक विवाह कर लूं। तुम्हारी क्या सम्मति

है"। ईश्वरचन्द्र गुरु की बात सुन कर मनमें सोचने लगे कि "ये पच्चासी वर्ष के वृद्ध यदि किसी बालिका से विवाह करेंगे तो इसका क्या परिणाम होगा ? क्या थोड़े ही दिनों में यह मर न जायंगे ? क्या उनकी बालिका पत्नी को जन्म भर वैधव्य कष्ट के अथाह सागर में गोते न खाने पड़ेंगे ? हाय, उस समय उस कोमलहृदया पराधीना बालिका की क्या दशा होगी। " यही सब प्रश्न ईश्वरचन्द्र के मन में उठने लगे और उनका चित्त अतिव्यथित हो गया। अन्त में रुँधे हुए कण्ठ से उन्होंने उत्तर दिया "गुरू जी, आपके समान मैं बुद्धिमान नहीं हूं कि आपको कुछ सलाह दे सकूं। आपने संसार के बहुत कुछ उलट फेर देखे हैं। ऐसे विवाह के परिणाम भी आपने बहुत से देखे होंगे। ऐसी अवस्था में क्या ऐसा बेमेल और अनुचित विवाह करना आप उचित समझते हैं ? एक निरापराधिनी बालिका के जीवन के कुल सुखों को मिट्टी में मिलाने का आपको क्या अधिकार है ? केवल अपने स्वार्थ के लिये एक कोमल प्राण को जन्मभर रुलाना क्या आपसे बुद्धिमान पण्डित को शोभा देता है ?" पण्डित जी चुपचाप ईश्वरचन्द्र की बातें सुनते रहे और उस के उत्तर में ईश्वचन्द्र का दोनों हाथ थाम कर बड़ी नम्रता से उन्होंने अपने विवाह की आवश्यकता जतला कर इस कार्य में उनकी सम्मति चाही। परन्तु हमारे अटलचित्त ईश्वरचन्द्र नाहीं ही करते गए और अन्त को यह कह कर घर चले आए कि "न जाने कुलीनों में से कब यह सत्यानाशी प्रथा जड़मूल से नष्ट होगी"! इधर तो ये घर चले, उधर गुरुजी के विवाह का आयोजन होने लगा और पाठको, कहते कलेजा कांपता है कि पचासी वर्ष के वृद्ध से बारह वर्ष की एक अति रूपवती कुलीन कन्या का विवाह होही गया।

ईश्वरचन्द्र ने जब इस विवाह का वृत्तान्त सुना तो कांप उठे और सजलनयन हो रुद्धकण्ठ से चिल्ला उठे "हे परमात्मा क्या इस देश को रसातल भेजना ही तेरा अभिप्राय है ? जहां नारियां कष्ट पाती हैं, उस घर, उस देश का कभी कल्याण नहीं होता।" बस, यह कह कर ईश्वरचन्द्र चुप हो गए और मन में कुछ सोचने लगे, और साथही उनके मुख से दृढ़प्रतिज्ञाव्यञ्जक लक्षण झलकने लगे। मनहीं मन उन्होंने कुछ निश्चय किया। क्या निश्चय किया, इसका हाल आगे चल कर उनके कामों से आप लोगों को विदित होगा। एक दिन पण्डित जी ने विद्यासागर से कहा "इतने दिन हुए तुम अपनी नवीन गुरुपत्नी के दर्शनों को नहीं गए। हमारे अचलचित्त चरित्रनायक रो दिए, आंखों से दो धारा आंसू बह निकलीं। पण्डित जी उस समय तो चुप हो गए, परन्तु एक दिन वे ईश्वरचन्द्र को जबरदस्ती घर लेही गए। वहां जाकर ईश्वरचन्द्र ने जब अपनी बालिका गुरुपत्नी को देखा तो उनके चित्त में करुणा का समुद्र उमड़ आया, जिसके जलकणों ने आंखों द्वारा बह कर गुरुपत्नी के पाद्यअर्घ का काम किया, और २) गुरुपत्नी के चरणों में प्रणामी रख कर हमारे चरित्रनायक घर से बाहर निकल आए। गुरु जी ने शिष्य को कुछ जलपान करने को कहा, परन्तु हमारे तेजस्वी महात्मा ने उत्तर दिया 'इस नरककुण्ड में अब जलस्पर्श नहीं करूंगा।" यह कह वे सीधे घर चले आए। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पण्डित शम्भूचन्द्र जी थोड़े ही दिन पीछे परलोक सिधार गए और उनकी विधवा पत्नी पिता के घर जा रही।

इसी बीच में जब ईश्वचन्द्र न्याय और दर्शनशास्त्र पढ़ रहे थे तो व्याकरण की दूसरी श्रेणी के अध्यापक ने कुछ दिनों के लिये छुट्टी ली। हमारे चरित्रनायक ही उतने समय तक के लिये इस पद पर नियुक्त हुए जिसे उन्होंने अच्छी योग्यता से निबाहा। इनकी शिक्षा देने की प्रणाली को कालेज के सब पण्डितों ने सराहा। इसके पीछे कुछ दिनों में दर्शन शास्त्र की परीक्षा समाप्त की। ईश्वरचन्द्र की सफलता देख कर उस श्रेणी के अध्यापक ने कहा था कि

यों तो बहुत बड़े बड़े पण्डित देख पड़ते हैं, परन्तु ऐसा कोई बिरला ही देख पड़ेगा जिसने आरम्भ से लेकर अब तक प्रत्येक शास्त्र की परीक्षा में प्रथम स्थान अधिकृत किया हो।

सन् १८४१ ईसवी की १ जून को शिक्षा समाप्त कर ईश्वरचन्द्र ने कालेज छोड़ा और साथही अंगरेजी पढ़ने की आकांक्षा से उन्होंने घर में एक शिक्षक नौकर रख लिया और थोड़े ही दिनों में अंग्रेज़ी और हिन्दी में भी इन्होंने विशेष व्युत्पत्ति प्राप्त कर ली। ईश्वरचन्द्र के कालेज छोड़ने के पीछे कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम्स कालेज के प्रधान पण्डित की जगह खाली हुई। अतएव वहां के अध्यक्ष मार्शल साहब ने, जो पहिले संस्कृत कालेज में रह चुके थे और विद्यासागर के गुणों से अच्छी तरह परिचित थे, इन्हींको वह पद देना स्थिर किया। परन्तु विद्यासागर उस समय अपनी जन्मभूमि वीरसिंह ग्राम में थे, अतएव मार्शल साहब ने उन्हें घर से बुला कर ५०) मासिक वेतन पर इस पद पर नियुक्त किया। उस समय विलायत से जो सिविलियन यहां नौकरी करने आते थे, उन्हें यहां के फ़ोर्ट विलियम्स कालेज में देशीभाषा की परीक्षा देनी पड़ती थी। यदि कोई सिविलियन फ़ेल होजाता तो उसे निराश हो विलायत लौट जाना पड़ता था। इन सिविलियनों की परीक्षा हमारे चरित्रनायक ही लेते थे। अतएव एक दिन अध्यक्ष मार्शल साहब ने इनसे कहा कि "सिविलियन लोग बहुत सा द्रव्य व्यय कर नौकरी की आशा से हज़ारों कोस से विदेश आते हैं। इसमें यदि वे कृतकार्य नहीं होते तो उनकी दुर्दशा का ठिकाना नहीं रहता। अतएव आप कृपाकर उनसे कठिन प्रश्न न किया करें और यथासाध्य उन्हें पास करा देने का उद्योग करें। पाठको! हमारे धनहीन चरित्रनायक ने, जिन्होंने आधा पेट भोजन कर दरिद्रता से कठिन संग्राम कर विद्याभ्यास किया था, और अब ५०) मासिक पर नौकर हो गए थे, अपने अध्यक्ष के इस अनुरोध का उत्तर दिया "नहीं, नहीं, साहब, मुझसे यह नौकरी न होगी। चाहे भिक्षा से पेट पालना पड़े, परन्तु मैं अनुचित कार्य कभी न करूंगा।" इस धर्मपरायण, निर्भीतचित्त ब्राह्मण युवक के उत्तर को ज़रा सोचिए और कहिए तो सही आपमें कै ऐसे मनुष्य निकलेंगे जो धर्म के आगे समस्त संसारी सुखों को तुच्छ समझते हैं। क्या विद्यासागर नहीं जानते थे कि पिता बड़े गरीब हैं, मुझे भी भर पेट अन्न आज तक प्राप्त न हुआ। इस अवस्था में यदि नौकरी छूट जायगी तो मेरा कहां ठिकाना लगेगा। परन्तु नहीं—ऐसी सामान्य बातों से तो कायर ही डर जाया करते हैं। धर्मवीरों को इनसे भय कहां। अस्तु, विद्यासागर ने साफ़ नाहीं करदी। क्रोधित होना तो दूर रहा, वरन् मार्शल साहब को स्वयम् लज्जित होना पड़ा और हमारे चरित्रनायक की सत्यनिष्ठा ने उनके चित्त में जगह करली। "अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहना" हमारे चरित्रनायक का मोटो था। इसी बीच में फ़ोर्ट विलियम्स् कालेज के हेडराइटर का पद खाली हुआ। मार्शल साहब ने विद्यासागर ही को यह पद देना चाहा, परन्तु उन्होंने उसे आप न ले, अपने एक मित्र को उक्त पद पर ८०) मासिक पर नौकर रखवा दिया। नौकर होने के पीछे सबसे पहिला काम विद्यासागर का अपने वृद्ध पिता को परिश्रमशील नौकरी से छुट्टी देना था। उन्होंने अपने पिता को नौकरी छोड़ कर बैठ रहने के लिये अनुरोध किया और २०) मासिक घर पर उनके पास भेजने लगे। बाकी ३०) रुपए से कलकत्ते में ८। ९ आदमियों की गृहस्थी चलाते थे।

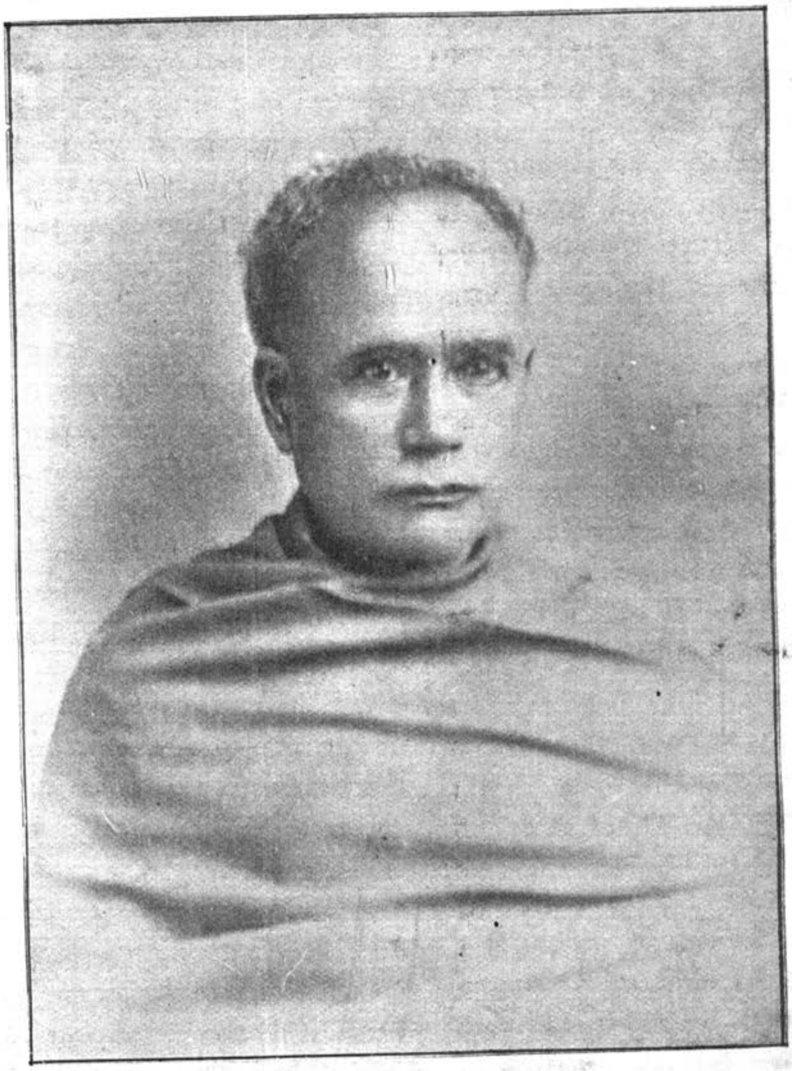
फ़ोर्ट विलियम्स कालेज की सीनियर और जूनियर परीक्षाओं के प्रश्न निर्वाचन का भार भी विद्यासागर ही पर था, जिस कठिन कार्य को वह बड़ी योग्यता से निवाहते थे।

जिस समय हमारे चरित्रनायक फ़ोर्ट विलियम्स कालेज में पढ़ा रहे थे, उसी समय एक दिन भारत के गवर्नर जेनेरेल उस कालेज को देखने

आए। वहां विद्यासागर से बात चीत कर वे अतिप्रसन्न हुए। साथ ही विद्यासागर ने लाट साहब से यह भी कहा कि "गवर्न्मेंण्ट संस्कृत कालेज की उन्नति की ओर कुछ ध्यान नहीं देती। यहां के जो लड़के पास होते हैं उन्हें सर्कार कोई नौकरी नहीं देती, केवल एक जज-पण्डित का पद था, वह भी तोड़ दिया गया। अतएव कालेज के छात्र दिन पर दिन घटते जाते हैं। आप कृपा कर यदि बङ्गाल प्रान्त के प्रत्येक जिलों में विद्यालय स्थापित कर संस्कृत कालेज के उत्तीर्ण विद्यार्थियों को उन विद्यालयों का शिक्षक नियुक्त करें तो अति उत्तम हो"। बुद्धिमान लार्ड हारडिञ्ज ने विद्यासागर के प्रस्तावानुसार सन् १८४५ ईसवी से समस्त बङ्गाल प्रान्त में एक सौ एक विद्यालय स्थापित करने की आज्ञा दे दी और साथ ही यह आज्ञा भी दी कि संस्कृत कालेज के पास किए हुए विद्यार्थी इन पाठशालाओं के शिक्षक नियुक्त किए जांय। इन शिक्षकों की परीक्षा का भार मार्शल साहब और विद्यासागर पर रक्खा गया। लार्ड हारडिञ्ज के स्थापित किए हुए विद्यालयों में से अब भी कई एक विद्यालय हारडिञ्ज-बङ्ग-विद्यालय के नाम से बङ्गालप्रान्त में मौजूद हैं।

इसी बीच में संस्कृत कालेज के व्याकरण की प्रथम श्रेणी के अध्यापक की जगह खाली हुई। अध्यक्षों ने विद्यासागर ही को यह जगह देनी चाही, परन्तु हमारे निर्लोभी परोपकारी महात्मा ने यह नौकरी आप न ले अपने मित्र तारानाथ वाचस्पति को ९०) मासिक पर दिलवा दी। जिस समय तारानाथ जी की नौकरी की बातचीत विद्यासागर ने अध्यक्षों से की थी उस समय पण्डित तारानाथ कलकत्ते में न थे। अध्यापक की आवश्यकता भी शीघ्र ही थी। अतएव विद्यासागर कलकत्ते से तीस कोस दूर रात दिन चल कर पण्डित जी के घर पहुंचे और वहां से उन्हें अपने साथ लाकर उस पद पर नौकर रखवा दिया। हमारे उदारचित्त ईश्वरचन्द्र पण्डित जी से किसी अच्छी नौकरी दिलाने की पहिले ही प्रतिज्ञा कर चुके थे, अतएव समय पड़ने पर अपने स्वार्थ का कुछ ख्याल न कर उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

अस्तु, अभी तो हमने विद्यासागर महाशय की परोपकारता का यह छोटा सा एक ही दृष्टान्त दिखलाया। आगे चल कर उनके गुण पाठकों पर सम्पूर्ण रूप से विदित होते जायंगे। परन्तु साथ ही हम आपलेगों को उनकी मातृभक्ति का एक नमूना दिखा दिया चाहते हैं। जिस समय महात्मा विद्यासागर फ़ोर्टविलियम्स कालेज में नौकरी कर रहे थे, उसी समय एक दिन उनके घर से उनके छोटे भाई के विवाह का सन्देसा आया। कलकत्ते से उनके घर के और सब लोग तो विवाह में सम्मिलित होने के लिये वीरसिंह ग्राम को चल दिए, परन्तु कार्याधिक्य के कारण कालेज के अध्यक्ष ने विद्यासागर को छुट्टी न दी। उस दिन तो ये कुछ न बोले और सन्ध्या को घर पर आ भोजन इत्यादि कर लेट रहे। परन्तु नींद कहां? वहां तो यही ख्याल बँध रहा था कि घर किस प्रकार से जाऊं। हमारे मातृभक्त विद्यासागर माता की आज्ञापालन में अपने को असमर्थ देख अत्यन्त दुखी हुए। वह अच्छी प्रकार से जानते थे कि मेरी स्नेहमयी माता मुझसे जैसा स्नेह रखती है, सम्भव नहीं कि विवाह में मुझे अनुपस्थित देख वह दुखी न हो। क्या मैं ही अपनी देवीतुल्य माता के दुःख का कारण होऊंगा? उन्होंने कितना कष्ट सह कर मुझको इतना बड़ा किया, परन्तु अब भी क्या मैं उन्हें कष्ट ही देता रहूंगा। ऐसा करने के लिये मुझे किसने विवश किया? नौकरी ने! धिक्कार है ऐसी नौकरी पर। यही सोचते सोचते सवेरा हो गया। सवेरा होते ही अति शीघ्र प्रातकृत्य समाप्त कर ईश्वरचन्द्र कालेज के अध्यक्ष मार्शल साहब के घर जा पहुंचे और उनसे बोले कि "साहब, मुझे घर अवश्य ही जाना है। माता जी ने बुलाया है। मैं यहां अब एक



पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ।

घड़ी नहीं ठहर सकता। छुट्टी दीजिए या इस्तीफ़ा मंज़ूर कीजिए।" मार्शल साहब इस ब्राम्हण युवक की मातृभक्ति देख कर मुग्ध हो गए और तत्क्षण उन्हें घर जाने की छुट्टी दे दी। तदनुसार यह भी उसी समय टेट में कुछ द्रव्य ले सीधे घर की ओर चल पड़े। उनका घर कलकत्ते से दो दिन का मार्ग था। उस समय रेल थी ही नहीं, मार्ग में भी चोर डाकुओं का बड़ा भय रहता था, परन्तु हमारे निर्भीतचित्त महात्मा इन सब की कुछ परवाह न कर अकेले ही घर की ओर चले। उस समय वर्षाकाल था। मार्ग बड़ा खराब हो रहा था, परन्तु विद्यासागर धुन बाँधे चलते ही गए। बीच में एक ग्राम में रात को विश्राम कर फिर सवेरे चलना प्रारम्भ कर दिया। चलते चलते मध्यान्ह समय एक नदी के तीर आ खड़े हुए। वर्षाकाल के कारण यह नदी खूब ही उमड़ रही थी। तरङ्ग का वेग ऐसा था कि निमिषमात्र में फेंका हुआ तृण तरङ्ग के धक्के से टूक टूक हो जाता था। सारांश यह कि वर्षाकाल में नदियों की जो अवस्था होती है वही इस नदी की भी अवस्था थी। पार जाने के लिये कोई नाव भी नहीं थी। क्या करें, आजही बारात जाने वाली है; घर पहुंचना बहुत आवश्यक है। यही सब विचारते विद्यासागर नदी के तीर खड़े रहे; परन्तु थोड़ी ही देर में कर्तव्य स्थिर कर नदी में कूद पड़े और उस पार जाने के लिये तैरने लगे और अन्त को उनके साहस ने उन्हें पार पहुंचा ही दिया। पार जाकर अपने मामा के यहां मध्यान्ह-कृत्य समाप्त कर फिर घर की ओर चले। सन्ध्या के समय फिर ऐसी ही एक नदी ने विद्यासागर का मार्ग रोका। उसे भी इन्होंने वैसे ही पार किया। उस पार कई कोस का निर्जन मैदान था, जहां चोर डाकुओं का भी अधिक भय रहता था, परन्तु हमारे चरित्रनायक अपनी इष्टदेवी माता के चरणों में ध्यान लगाए सीधे घर की ओर चले। उधर घर में सन्ध्या ही को बरात चली गई थी। ईश्वरचन्द्र की माता पुत्र के वियोग से अति दुखित हो अश्रुविमोचन कर रही थी। आधी रात हो गई, माता ने कुछ भी भोजन न किया। घर में सब सो गए थे, ऐसे समय में एकाएकी उन्होंने पुत्र का कण्ठस्वर सुना जो दरवाजा खटखटा कर पुकार रहे थे "मा, मा, मैं आ गया, दरवाज़ा खोल दो।" ईश्वरचन्द्र की माता ने बिजली की नाई दौड़ कर द्वार खोल दिया और हमारे चरित्रनायक माता के चरणों पर गिर पड़े। पहिले तो माता पुत्र मिल कर खूब रोए, फिर माता ने पुत्र के गीले वस्त्र बदलवाए और दोनों ने बैठ कर साथही भोजन किया। पाठको! क्या आपमें से कोई ऐसे मातृ-भक्त है? यदि न हो तो आप अपनी माता के उपयुक्त सन्तान नहीं। आपको महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को आदर्श मान कर अपनी स्नेहमयी माता की भक्ति और सेवा करनी चाहिए। शोक है कि "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" ऐसे सिद्धान्त के रखनेवाले भारतवर्ष में वृद्धमाताएं अपने पुत्रों द्वारा तिरस्कृत होती हैं। हमें अपनी स्त्री पुत्रों ही की सेवा से छुट्टी नहीं मिलती कि वृद्धमाँतों की बात पूछें। हमारे लिये क्या यह लज्जा की बात नहीं!

घर में कुछ दिन रह कर विद्यासागर अपनी नौकरी पर लौट आए। अंग्रेज़ अफ़सर लोग प्रायः विद्यासागर से काव्य रचवाया करते थे और प्रसन्न हो उन्हें सैंकड़ों रुपए पुरस्कार दिया करते थे। परन्तु हमारे चरित्रनायक वे सब रुपए कालेज के छात्रों की वृत्ति में दे डालते थे। आप ५०) मासिक वेतन के सिवाय एक कौड़ी भी नहीं छूते थे। इसी अवसर पर संस्कृत कालेज के सहकारी सम्पादक की जगह खाली हुई और विद्यासागर उस जगह बदल गए। संस्कृत कालेज में आने के उपरान्त इन्होंने कालेज का नित्य नवीन सुधार करना प्रारम्भ किया। शिक्षक और बालकों के आने जाने का ठीक समय नियत कर परीक्षा लेने की नवीन पद्धति अवलम्बन करने के कारण उस वर्ष की परीक्षा का फल अति उत्तम रहा, जिस कारण से कालेज

के अध्यक्ष सब इन पर अति प्रसन्न हुए। इनकें बनाए हुए नियमानुसार आज तक संस्कृत कालेज में शिक्षा दी जाती है।

विद्यासागर महाशय को आत्मसम्मान का कैसा ख्याल रहता था इसका भी एक उदाहरण सुन लीजिए। एक दिन का वृत्तान्त है कि किसी विशेष कार्य के कारण विद्यासागर हिन्दू कालेज के अध्यक्ष कार साहब के पास गए थे। साहब बहादुर के मग़ज़ में 'काले आदमी' की कुछ बू समाई हुई थी। इस लिये विद्यासागर के आने की कुछ परवाह न कर वह टेबुल पर सबूट पैर फैला कर कुर्सी पर ढासना लगाए अधलिटे से रहे। हमारे चरित्रनायक ने साहब के इस आचरण से अपना अपमान समझा, परन्तु चुपचाप अपना कार्य कर चले आए। एक दिन कहीं ऐसा मौका आन पड़ा कि साहब बहादुर के किसी कार्य के लिये विद्यासागर के पास आना पड़ा। हमारे प्रवर विद्यासगार महाशय भी उसी प्रकार फटी हुई चट्टी पहिरे हुए टेबुल पर अधखुले पैर फैलाए कुर्सी पर ढासना लगाए अधलिटे से रहे। साहब बहादुर ने कमरे में प्रवेश कर जब विद्यासागर का यह आचरण देखा तो अति क्रोधित हुए। वहां बैठने के लिये दूसरी कुर्सी भी न थी। अतएव साहब बहादुर शीघ्रता से अपना कार्य समाप्त कर अपने स्थान को चले आए और विद्यासागर की शिकायत कर संस्कृत कालेज के अध्यक्ष मएट साहब के पास एक चिट्ठी लिखी। मएट साहब ने विद्यासागर महाशय से कैफियत तलब की जिसका उत्तर उन्होंने बड़ा ही मजेदार दिया था। उन्होंने कहा कि "मैं एक बार कार साहब से मिलने गया था। वहीं से अभ्यर्थना करने की यह रीति सीख आया था। मैंने समझा कि भारतवासी असभ्य हैं, सुसभ्य देश में शायद किसीकी खातिरदारी करने की यही रीति होती है, इसलिये मौका पड़ने पर मैंने उपार्जित शिक्षा के खर्च करने में कृपणता नहीं की है। इसमें यदि मेरा कुछ अपराध हुआ तो उसके उत्तरदाता मेरे शिक्षागुरु कार साहब ही हैं।" अध्यक्ष मएट साहब विद्यासागर का युक्तिपूर्ण उत्तर सुन निरुत्तर हो गए।

इसके पीछे संस्कृत कालेज की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में कालेज के सम्पादक से विद्यसागर की कुछ अनबन हो गई। अतएव हमारे स्वाधीनचेता महात्मा ने तत्क्षण नौकरी छोड़ दी। नौकरी छोड़ दी, परन्तु खरचा जारी रहा। उनकी ओर से जो अनाथ बालक भोजन पाते थे वे वैसेही पाते रहे। कलकत्ते के घर का खरच छोटे भाई के वेतन से चलने लगा और ५०) मासिक उधार लेकर पिता के पास जाने लगे। यद्यपि द्रव्याभाव से समय समय पर उन्हें अति कष्ट भोगना पड़ता था परन्तु चिन्ता का लेशमात्र नहीं! सर्वदा दुखियों के दुःख दूर करने के लिये कमर बांधे तैयार! इसी बीच में मएट साहब के कहने से उन्होंने एक अंग्रेज़ को छ महीने तक बङ्गला और हिन्दी पढ़ाई थी। शिक्षा समाप्त होने पर उस साहब ने ५०) मासिक वेतन के हिसाब से विद्यासागर को ३००) देना चाहा, परन्तु हमारे निर्लोभी महात्मा ने इस तङ्गी की अवस्था में भी यह द्रव्य लेना अस्वीकार कर कहा "वाह साहब! अपने मित्र मएट साहब के अनुरोध से मैंने आपको थोड़े दिनों तक पढ़ा दिया उसका वेतन कैसा?"

नौकरी छोड़ने के पीछे १८४९ ईसवी तक इन्होंने नौकरी आदि कोई काम नहीं किया। आपलोगों को शायद याद होगा कि विद्यासागर ने अपने एक मित्र को ८०) मासिक वेतन पर फ़ोर्ट विलियम्स कालेज के हेडराइटर के पद पर नियुक्त करा दिया था। उनके यह मित्र अब नौकरी छोड़ कर डाक्टरी करने लगे। तब मार्शेल साहब के बहुत ज़ोर देने पर विद्यासागार ने वह पद ग्रहण कर लिया। इसके पीछे ही संस्कृत कालेज के साहित्याध्यापक का पद शून्य होने पर विद्यासागर उस पद पर नियुक्त कर दिए गए। थोड़े ही दिन पीछे जब कालेज के सेक्रेटरी का पद शून्य हुआ

तो वह पद तोड़ कर प्रिन्सिपल का नवीन पद बनाया गया, जिस पर १५०) मासिक पर विद्यासागर नियुक्त हुए। इस पद पर नियुक्त होने के साथ ही उन्होंने अपनी तमाम विद्याबुद्धि कालेज की उन्नति में लगा दी। कालेज के पुस्तकालय में बहुत सी हस्तलिखित प्राचीन संस्कृत पुस्तकें पड़ी सड़ रही थीं। विद्यासागर महाशय ने उन सब पुस्तकों को छपवा दिया। इसके सिवाय संस्कृत कालेज के छात्रों को फ़ीस नहीं देनी पड़ती थी। एजुकेशनेल काउन्सिल (शिक्षासमिति) में प्रस्ताव कर ईश्वरचन्द्र ने यह नियम पास करवा दिया कि प्रत्येक समर्थ छात्रों को फीस देनी पड़ेगी। इस पर कई महाशयों ने उन पर कटाक्ष भी किया। परन्तु उन लोगों की भूल थी। बुद्धिमान पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जानते थे कि बेण्टिक, मेटकाफ़, हेयर, बेथून ऐसे सदाशय अंग्रेज अब भारतवर्ष में न आवेंगे। उस अवस्था में कुछ फ़ीस नहीं है इसके बदले दूनी फ़ीस लगा दी जायगी। इस लिये पहिले ही से थोड़ी फ़ीस लगा कर उन्होंने भावी विपद का बोझा हलका कर दिया। बाकी दरिद्र छात्रों की निर्दिष्ट संख्या तो अब तक बिना वेतन संस्कृत कालेज में शिक्षा पाती है।

आपलोगों को बतलाया जा चुका है कि विद्यासागर सर्वदा संस्कृत शिक्षा की उन्नति के उपाय सोचा करते थे। साथही उन्हें यह भी ध्यान आया कि बिना व्याकरण पढ़े संस्कृत काव्य का आनन्द नहीं आता। बहुत से लोग संस्कृत काव्य पढ़ने की इच्छा रहने पर भी व्याकरण की भयावनी मूर्ति देख कर डर जाते हैं और काव्य का रसास्वाद नहीं ले सकते। अतएव ऐसे लोगों के सुबीते के लिये बङ्गला भाषा में उन्होंने व्याकरण की उपक्रमणिका रच कर संस्कृत व्याकरण का मार्ग सुगम कर दिया। इसके अतिरिक्त सहज सहज संस्कृत ग्रन्थ पञ्चतन्त्र, रामायण, हितोपदेश और महाभारत इत्यादि के संग्रह कर उन्होंने ऋजुपाठ नाम की तीन पुस्तकें बना डालीं जो अब बङ्गाल प्रान्त के विद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं। यह तो उनकी साहित्यचर्चा का आभासमात्र दिया गया है। आगे चल कर उनकी समस्त रचना का वृत्तान्त आपलोगों को विदित होगा।

इस समय हमारे चरित्रनायक की यशोराशि चारों ओर धीरे धीरे फैल रही थी। ऐसे समय में एजुकेशनेल काउन्सिल के सभापति, बङ्गललनाओं के आन्तरिक शुभचिन्तक मिस्टर ड्रिन्कवाटर बेथून से विद्यासागर की भेंट हुई। हमारे गुणी ईश्वरचन्द्र की मिलनसारी ने उन्हें अपना हितैषी बन्धु बना लिया। केवल यही क्यों, गवर्नर जेनेरेल लार्ड हारडिंज, डेलहौसी, केनिंग प्रभृति उच्चपदाधिकारी अंग्रेज़ लोग भी विद्यासागर को विशेष सम्मान की दृष्टि से देखते थे और शिक्षासम्बन्ध में इनकी सम्मति सर्वोपरि समझते थे। इनका स्वभाव भी ऐसा सरल और मिलनसार था कि जो इनसे एक बार मिलता वह उनकी प्रशंसा किए बिना न रहता; परन्तु हमारे दयाशील चरित्रनायक यथार्थ हितैषिता दीनहीन अनाथ बालकों और विधवाओं से रखते थे। जहां किसी दरिद्र परिवार का कष्ट इनके कर्णगोचर होता, बस, तत्क्षण वे स्वयम् वहां जा पहुंचते थे और तन मन धन से उन बिचारों के कष्ट दूर करने की चेष्टा करते थे। जब कभी अधिक परिश्रम से थक जाया करते तो वे सांवताल परगने में ई आई रेलवे के एक स्टेशन खरमटांड़ नामक ग्राम में जाकर विश्राम किया करते, परन्तु वहां भी सर्वदा सांवताली दीन दुखियों के कष्टमोचन में दत्तचित्त रहते थे। विद्यासागर ने थोड़ी सी होमिओपेथिक डाक्टरी भी सीख ली थी और जब किसी दरिद्र रोगी के यहां जाते तो दवाई का बक्स साथ रहता था। एक बार का वृत्तान्त है कि खरमटांड़ में एक दिन सबेरे एक मेहतर ने आकर पण्डित ईश्वरचन्द्र से रोकर कहा कि "महाराज, मेरी स्त्री को हैज़ा हो गया है। आप यदि कुछ उपाय न करेंगे तो मुझ गरीब का सत्यानाश हो जायगा।"

हमारे निरीह परोपकारी महात्मा तत्क्षण एक मनुष्य के साथ बैठने का एक मोढ़ा और औषधि का बक्स लेकर उस मेहतर के घर जा पहुंचे और समस्त दिन निराहार बैठे हुए उस स्त्री का इलाज करने लगे। अन्त के सन्ध्या समय जब रोगी की अवस्था निरापद हो गई तो घर आकर स्नानाहार किया। पाठको! कहिए तो सही, ऐसे कै मनुष्य निकलेंगे जो मेहतर ऐसी नीच जाति के घर जाकर मलराशि का दुर्गन्ध इत्यादि का सब दुःख सहन कर रोगी की सेवा करें। लाट साहब के दर्बार में सम्मान प्राप्त करने के बहुत से लोग निकल आवेंगे, परन्तु उन्हींमें से क्या कोई ऐसा मनुष्य भी निकलेगा जो अपने मान अपमान, नीच ऊंच, सुख दुःख का कुछ ख्याल न कर सर्वदा दीन दुखियों के दुःखमोचन में बद्धपरिकर रहे। बहुत धनवान वा उपाधिप्राप्त होनेही से सच्चा सम्मान प्राप्त नहीं होता। सच्चा सम्मान तो ऐसेही परोपकारी कामों से मिलता है। भारतवर्ष में नाम को तो बहुत से देशहितैषी हैं, परन्तु ऐसे कै हैं जो भारत की दीन प्रजाओं से सच्चा हित रखते हैं। यदि सच्चे देशहितैषी बनने का दावा रखते हैं तो इस परोपकारी महात्मा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का अनुकरण क्यों नहीं करते?

अस्तु, इसी प्रकार से हमारे दयावान चरित्रनायक दरिद्रों की सर्वदा सहायता किया ही करते थे, जिस कारण बङ्गवासी उन्हें विद्यासागर के बदले दयासागर कहने लग गए थे।

विद्यासागर के प्रिन्सिपल होने के पीछे शिक्षा समिति ने कालेज की पूर्ण उन्नति किस प्रकार हो सकती है, इस विषय का उनसे एक रिपोर्ट मांगी। विद्यासागर ने अपनी समस्त विद्याबुद्धि खर्च कर यह रिपोर्ट तैयार कर समिति के निकट भेज दी। समिति के अध्यक्ष इस रिपोर्ट के पढ़ कर ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्होंने विद्यासागर का वेतन १५०) से ३००) कर दिया और उन्हींकी रिपोर्ट के अनुसार बङ्गाल प्रान्त में बहुत से नार्मल स्कूल स्थापित हुए, तथा सन् १८५५ ईसवी से २००) मासिक वेतन पर नदिया, हुगली, बर्द्धमान और मेदनीपुर इन चारों ज़िले के इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स विद्यासागर नियत हुए। अस्तु, दोनों मिला कर अब इन्हें ५००) मासिक वेतन मिलने लगा। इसके पहिले संस्कृत कालेज में जो विद्यार्थी चाहता अंग्रेज़ी पढ़ता था; परन्तु विद्यासागर ने यह नियम कर दिया कि प्रत्येक विद्यार्थी को परीक्षा में अन्य विषयों की भांति अंग्रेज़ी के नम्बरों पर भी ध्यान रखना पड़ेगा। गवर्न्मेण्ट ने भी इनके इस कार्य का सर्वथा अनुमोदन किया। इसी समय एजुकेशनेल काउन्सिल तोड़ कर बङ्गाल के छोटे लाट ह्यालिडे साहब ने डाइरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन नाम का नवीन पद बनाकर डबल्यू गारडन यङ्ग नामक एक छोकरे सिवीलियन के उस पद पर नियुक्त कर दिया। ईश्वरचन्द्र ने ह्यालिडे साहब के समझाया कि आप यदि ऐसी जवाबदेही के पद पर किसी प्रवीण मनुष्य के नियत करते तो उत्तम होता। इसपर लाट साहब ने उत्तर दिया कि काम तो सब मैं ही करूंगा, यङ्ग साहब तो केवल उपलक्ष्ममात्र हैं। आप आफ़िस में जाकर उन्हें ज़रा कामकाज सिखा आया करिए। अस्तु विद्यासागर सप्ताह में एक दिन डाइरेक्टर साहब के काम सिखला आया करते थे।

सन् १८५४ ईसवी में विलायत के मन्त्रीमण्डल ने भारतवासियों की शिक्षा के लिये कई लाख रुपए खर्च करना मञ्जूर किया और सन् १८३५ में मेकाले और लार्ड विलियम बेण्टिंक की पद्धति के अनुसार शिक्षा देना स्थिर किया। अतएव उसी आज्ञा के अनुसार विद्यासागर ने बङ्ग-प्रान्त के कई जिलों में बहुत से विद्यालय स्थापित किए। डाइरेक्टर यङ्ग साहब इसके विरोधी थे। उन्होंने अन्य दो अङ्गरेज़ इन्स्पेक्टरों की मन्त्रणानुसार विद्यासागर को नवीन विद्यालय स्थापित करने से निषेध किया; परन्तु विद्यासागर ने उनकी बात न सुन कर लाट ह्यालिडे को इस वृत्तान्त से सूचित किया। छोटे लाट

ने इस विषय में मन्त्रीमण्डली की सम्मति मांगी, जिसके उत्तर में उन्होंने विद्यासागर ही की सम्मति पसन्द की। अस्तु, हमारे उत्साही चरित्रनायक दूने उत्साह से नए नए विद्यालय स्थापित करने लगे। डाइरेक्टर साहब प्रत्येक कार्य में विद्यासागर का विरोध करने लगे। परन्तु ईश्वरचन्द्र ऐसी बुद्धिमानी से काम चलाते थे कि साहब बहादुर की कुछ दाल नहीं गलने पाती थी। ह्यालिडे साहब के कहने से विद्यासागर ने उपरोक्त चारों ज़िलों में बहुत सी कन्या-पाठशालाएं स्थापित कीं। उन पाठशालाओं के खर्चे का बिल डाइरेकृर साहब ने मंजूर नहीं किया और साथ ही यह भी कहा कि कन्या पाठशाला में द्रव्य व्यय करना वर्तमान शिक्षानीति के सम्पूर्ण विरुद्ध है। इस बात से हमारे चरित्रनायक के चित्त को बड़ा कष्ट हुआ।

सर चार्ल्स उड के मतानुसार सन् १८५३ ईसवी में विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव हुआ और सन् १८५७ ईसवी के जनवरी महीने में युनिवर्सिटी स्थापित हुई। इस युनिवर्सिटी के सभासदों में विद्यासागर भी एक थे। प्रथम वर्ष के Convocation में हमारे माननीय चरित्रनायक को गवर्नर जेनरेल के बगल में आसन मिला था और हर एक काम में इनकी सम्मति समादृत होती थी। उसी वर्ष २८ नवम्बर को बोर्ड आफ़ एक्ज़ामिनर्स नियत हुआ जिसमें संस्कृत, बङ्गला और हिन्दी के प्रश्न निर्वाचन का भार विद्यासागर ही पर रक्खा गया, तथा सन् १८६५ ईसवी में यह एम० ए० के संस्कृत परीक्षक नियुक्त हुए। युनिवर्सिटी बनने के पीछे कई अधिवेशनों में संस्कृत कालेज के उठा देने का प्रस्ताव हुआ। बहुत से अङ्गरेज़ों और बङ्गालियों ने इस मत की पुष्टि की, परन्तु अकेले विद्यासागर की युक्ति और तर्क वितर्क ने उनके प्रतिपक्षियों का मुंह बन्द कर दिया और संस्कृत कालेज की रक्षा हो गई।

बङ्गाल के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर ह्यालिडे साहब और विद्यासागर में बड़ी मित्रता थी। वह प्रायः ही लाट साहब के घर काम काज की बातों के लिये जाया करते थे। सप्ताह में एक दिन तो अवश्य ही जाया करते थे। इनकी चाल बड़ी सीधी सादी थी। एक धोती, चादर और चट्टी जूता पहिने रहा करते थे, और इसी पोशाक़ से वह लाट के यहां भी जाया करते थे। एक दिन लाट साहब ने उन्हें चोगा चपकन पहिर कर आने के लिये विशेष अनुरोध किया। अतएव यह भी दो तीन दिन वह पोशाक पहिर कर लाट साहब के पास गए, परन्तु चौथे दिन हमारे सरलचित्त महात्मा बोल उठे "बस, साहब, यही मेरी आपकी अन्तिम भेंट है।" ह्यालिडे साहब ने चकित हो कर पूछा "क्यों पण्डित जी, क्या हुआ?" हमारे चरित्रनायक ने हँसकर जवाब दिया "महाशय, मुझसे कैदी की नाईं स्वांग सज कर आपसे भेंट करने नहीं आया जायगा। यह पोशाक मुझे बोझ मालूम पड़ती है।" लाट साहब ने विद्यासागर की सरलता देख कर कहा "कोई हर्ज नहीं। आपको यदि इस पोशाक के पहिरने में कुछ कष्ट मालूम देता हो तो आप चाहे जो पोशाक पहिर कर हमसे भेंट करने आया करें।" बहुत से लोग जिनका यह ख्याल है कि पोशाक ही भलमनसाहत का चिन्ह है, और इसीसे सम्मान प्राप्त होता है, आंख खोल कर देखें और विद्यासागर की इस सादगी से शिक्षा ग्रहण करें। भाइयो, सच्चा सम्मान तो केवल सच्चे गुणों ही से मिलता है, पोशाक से नहीं।

विद्यासागर और डाइरेक्टर साहब से कभी नहीं बनती थी। लाट ह्यालिडे सर्वदा इसी उद्योग में रहते कि दोनों में मित्रता हो जाय। परन्तु यङ्ग साहब बड़े क्रूरस्वभाव के मनुष्य थे और इसके विपरीत विद्यासागर सरल स्वभाव के थे। इस अवस्था में दोनों में मेल क्यों कर होने लगा था? एक बार विद्यासागर ने स्कूलों के Inspection की रिपोर्ट लिखकर डाइरेक्टर साहब को दी। डाइरेक्टर साहब ने रिपोर्ट देख कर कहा

कि "इस रिपोर्ट को खूब अच्छी प्रकार से सजा दीजिए, जिसमें अफ़सर लोग देख कर समझें कि शिक्षा का कार्य खूब अच्छी प्रकार से चल रहा है। इसके उत्तर में हमारे न्यायपरायण, उन्नत-हृदय महात्मा ने इस कार्य में अपना अपमान समझ उत्तर दिया कि "जो बात मैंने एक बार लिख दी उसमें अब कुछ अदल बदल नहीं हो सकता।" डाइरेक्टर साहब ऐसा करने के लिये ज़िद्द करने लगे, परन्तु विद्यासागर साफ़ नाहीं करते गए। अन्त को जब बात बढ़ने की नौबत आन पहुंची, तब विद्यासागर वहां से चल दिए और घर आकर नौकरी छोड़ने का अभिप्राय जतला कर डाइरेक्टर साहब को एक पत्र लिखा और साथ ही उस पत्र की एक नकल छोटे लाट हालिडे साहब के पास भी भेज दी। हालिडे साहब ने विद्यासागर को बुलाकर यह सङ्कल्प छोड़ देने के लिये बहुत कुछ समझाया, परन्तु हमारे दृढ़चित्त महात्मा ने साफ़ नाहीं की और कहा कि जो नौकरी एक बार छोड़ दी उसे अब कभी ग्रहण न करूंगा। यही मेरी अन्तिम नौकरी हुई, अब बाकी का जीवन मैं शिक्षाविस्तार और लोकहित में बिताऊंगा, तथा मेरा यह व्रत चिता के साथ अन्त होगा।' अतएव सन् १८५८ ईसवी के नवम्बर महीने में इन्होंने इस्तीफ़ा देही दिया। यद्यपि इस नौकरी के छोड़ देने से विद्यासागर ऐसे व्ययी आदमी को कुछ दिनों तक बहुत कष्ट उठाना पड़ा, परन्तु उन्होंने नौकरी इत्यादि नहीं की। उनके कई एक अंग्रेज़ मित्रों ने भी उन्हें नौकरी करने का अनुरोध किया, परन्तु वह प्रतिज्ञा पर अटल रहे। आगे चल कर उन्होंने किस प्रकार से देश-सेवा कर अपना कर्तव्य पालन किया इसका वृत्तान्त आप लोगों को 'सरस्वती' की आगामी संख्या में सुनाया जायगा। [शेष आगे।

वेणीप्रसाद

गुलबहार।

[गत अङ्क के आगे]

[६]

किश्ती मुङ्गेर के दूसरे किनारे जा लगी। मुङ्गेर के उस पार एक छोटा सा गांव था। नाव को गङ्गा किनारे एक खूंटे के सहारे से अटका कर बहार गुल और धाय को साथ लिए हुए उसी गांव में जाने का विचार करने लगा। पहिले बहार गङ्गा किनारे खड़ा हो कर मुङ्गेर की सुरङ्ग के उस स्थान को टकटकी बांध कर देखने लगा, जहां कुछ देर पहिले मीर क़ासिम खड़ा था। किन्तु जब नवाब के पकड़ने के लिये अंगरेज़ों ने बारह किश्तियां गङ्गा में इधर उधर दौड़ानी प्रारम्भ कीं, तब धाय ने बहार से कहा कि "बेटा! अब यहां पर एक लहज़ा भी न ठहरना चाहिए। क्या तुम नहीं देखते कि काफ़िर अंग्रेज़ तुम लोगों के पता लगाने के लिये दर्या में चारों ओर अपनी किश्तियां दौड़ा रहे हैं। चुनांचे अब फ़ौरन यहां से क़दम उठाओ और कहीं पर अपने को छिपाओ।"

बहार ने चिहुंक कर कहा,—"अम्मा! मेरे वालिद जहां गए हैं मैं भी वहीं जाया चाहता हूं।"

धाय बोली,—"ठहरो, तुम्हारे वालिद अभी तक ज़िंदः हैं। पस, तुम क्यों नाहक़ खुद बखुद अपने तईं अंग्रेज़ों के हाथ में फंसाया चाहते हो? अगर अंग्रेज़ों के हाथ में पड़नाही अच्छा समझते थे तो फिर भाग क्यों आए?"

धाय की बातों से बहार के होश ठिकाने हुए और तब उसने गुल और धाय को साथ लेकर गांव में जा एक कंगाल किसान की कुटिया में अपना डेरा डाला। उस दरिद्र किसान ने गुल या बहार को नहीं पहिचाना, केवल धनवान का लड़का समझ कर उसने उन सभों की अपने सामर्थ्य भर भली भांति पहुनाई की।

हा! एक दिन जिस गुल और बहार को मख़मली सेज पर भी सुख से नींद नहीं आती थी, उन्हें दरिद्र किसान की कुटी में टूटी चटाई पर सोना पड़ा और जिन्हें राजभोग पर अरुचि होती थी, उन्हें आज कच्चे पक्के ज्वार बाजरे और चना चबेना पर संतोष करना पड़ा। बलिहारी समय की है, यह जो चाहे सो करे।

[७]

रात दो पहर से अधिक जा चुकी है, निशादेवी ने स्याह चादर ओढ़ कर कृष्णाभिसारिका के सुन्दर वेश से अपने को संवारा है, चारों ओर गहरा सन्नाटा फैला हुआ है, पर कभी कभी उस सन्नाटे को झींगुर, स्यार, कुत्ते और निशाचर पक्षी अपनी कर्कश ध्वनि से दूर कर देते हैं। ऐसे समय में वह दरिद्र किसान अपनी कुटिया में सुखसे पड़ा सो रहा है, पर आफ़त के मारे बहार, गुल और धाय की आंखों में आज नींद का नाम निशान तक नहीं है। बहार ने कहा "प्यारी, गुल जागती है?"

गुल,—"हां, बहार!"

बहार,—"गुल! तू हमारे साथ चलेगी?"

गुल,—"ज़रूर चलूंगी, बहार!"

बहार,—"मगर, प्यारी हमशीरा! इस इक़रार के पेश्तर तुझे यह पूछना मुनासिब था कि कहां चलने का इरादा है।"

गुल,—"हां, बहार!

बहार,—"गुल! तू निरी भोली है।"

गुल,—"ऍं बहार!" इतना कहते कहते उस बालिका (गुल) की आंख से मोती के दाने की भांति एक बूंद आंसू लुढ़क गया, पर अन्धेरा रहने के कारण बहार ने उसे नहीं देखा। किन्तु गुल के आंसू की बूंद चलाने का क्या हेतु था, इसे भला हमारा नीरस हृदय कैसे समझ सकता है? बहारने कहा,—"गुल! मेरा दिल इस बात की गवाही देता है कि वालिद मेरे अभी तक मुँगेर के क़िले वाली सुरङ्ग में मौजूद होंगे। उन्होंने मुझे इशारे में यह बात बतलाई थी कि मैं क़ब्रिस्तान वाले पोशीदः तहख़ाने में मुन्तज़िर रहूंगा; चुनांचे ऐसा यक़ीन होता है कि जब तक काफ़िर अंग्रेज़ उनके पता लगाने से बाज़ न आएंगे, तब तक वे उसी जगह अपने तंईं छिपाए रहेंगे। लिहाज़ा मैं उनके वास्ते कुछ खाने पीने की चीज़ें लेकर उनके पास जाया चाहता हूं, सो क्या तू भी मेरे हमराह चलना चाहती है?"

गुल—"हां, बहार!"

बहार—"अहा, अफ़सोस, सद अफ़सोस! आज मेरे वालिद के मुंह में एक दाना भी नहीं गया है, या इलाही! तू मददगार हो मेरा।"

गुल—'तो चलो बहार! झटपट चलो। बाबा जान के देखने के वास्ते मेरी भी रूह तड़प रही है।"

बहार—"अच्छा, गुल! भला तू यह तो बतला कि किस हिकमत से हमलोग उस जगह तक पहुंच सकते हैं?"

गुल—"जैसे दिल चाहे, चलो बहार!"

बहार—'जा, री, भोली? तुझे ज़रा भी समझ नहीं है? प्यारी गुल! मैंने वहां तक पहुंचने के लिये एक हिकमत सोची है। ख़ैर, तू अपनी बीन लेले और मेरे साथ चल।"

बहार की धाय ने बहुत समझाया और शत्रुओं के मुंह में जाने से हज़ार रोका, पर सब व्यर्थ हुआ; क्योंकि उसने धाय के कहने पर ज़रा भी ध्यान न दिया। लाचार, धाय को भी उन दोनों का साथ देना पड़ा।

निदान, फिर तो कुटी में से एक शेर की बड़ी सी खाल ले और बीन लिये हुई गुल का हाथ पकड़ कर धाय के साथ बहार कुटी से बाहर हुआ और गङ्गा किनारे आकर सभों के साथ अपनी उसी किश्ती पर सवार हो मुँगेर के क़िले की ओर चला।

[८]

इसके बादही मुँगेर में एक प्रवाद फैल गया

कि "दो पहर रात को क़ब्रिस्तान की ओर से बहुत ही मीठी बीन की आवाज आती है और कभी कभी यह सुरीली मधुर तान भी सुनाई देती है कि—

"बहार आई तो उसके साथ ही,
गुल के क़दम आए।
हुई रुख़सत चमन से यह तो,
वह फिर कब ठहरती थी।"

परन्तु यह बीन बजाने या तान लड़ानेवाला कौन है, इसके पता लगाने में लोगों ने बहुत सिर मारा, पर सब व्यर्थ हुआ और किसीने भी इस विचित्र भेद का पता न पाया। उसी दिन से मुंगेर के हिन्दू और मुसलमानों ने भूत प्रेत के डर से क़िलेवाले क़ब्रिस्तान की ओर का जाना एक दम से छोड़ दिया, और अङ्गरेज़ो पहरेदार, जो रात को उधर पहरे पर तैनात होते, मारे डर के कांपा करते थे; यहां तक कि लोगों ने क़िले से भागने का विचार कर लिया था।

बात की बात में यह सब वृत्तान्त क्लाइव के कानों तक पहुंचा। वह इन बातों को सुनकर बेतहाशा हँस पड़ा। सच है, जो मौत से नहीं डरता, यहां तक कि जो डर क्या वस्तु है, इसे रत्ती भर भी नहीं जानता वह इस खबर को सुन कर क्यों न हँसेगा। खैर जो हो, पर उस रात को स्वयं क्लाइव पहरेवाले के पास सारी रात ठहर कर उस अफ़वाह के पता लगाने के लिये कमर कसकर तैयार हुआ।

उस समय क्लाइव जङ्गी पोशाक पहरे हुए था। दुनली बंदूक, गोली बारूद, से भरी हुई उसके हाथ में थी। पहरे वाला उससे जरा दूर हट कर खड़ा हुआ था और अंधेरी रात के सन्नाटे ने सबको अपनी स्याह चादर में छिपा लिया था। आधी रात के समय सुरङ्ग के मुहाने की ओर से रसीली बिहाग रागिनी की मतवाली ध्वनि बीन की तारों से निकल कर धीरे धीरे हवा में तैरने लगी और साथही किसी अलौकिक गले की गिटकिरी भी उसका साथ देने लगी। उस समय क्लाइव के निडर कलेजे में भी छिन भर के लिए कँपकपी पैदा हुई। पर उस वीर अंग्रेज़ ने इस दुर्बलता के लिये अपने हृदय को आपही धिक्कारा और दृढ़ता से अपने को निडर बनाया।

थोड़ी देर में सचमुच किसीके पैर की चाप सुनाई दी। चट क्लाइव ने अंधेरेही में उस आवाज़ पर निशाना साध कर बंदूक दाग दी। रात के गहरे सन्नाटे को तोड़ कर "दन दन" दो गोलियां आकाश में मिलगईं और उनके साथही किसीके पैर की आहट और बीन की मीठी धुनि भी सन्नाटे में मिल गई। तुरत लालटेन लेकर चारों ओर खोज की गई, पर कोई भी मरता जीता दिखलाई न दिया। यह दशा देख क्लाइव के अचरज का ठिकाना न रहा पर फिरभी दूसरी रात को इस रहस्य के पता लगाने का मनसूबा बांध कर वह अपनी पलंग पर जाकर सो रहा।

दूसरी रात को आकाश घने काले बादलों से छाया हुआ था। एक बार जोर से पानी भी बरस गया था। रह रह कर बिजली चमकती और झींगुर तथा मंडूकों के कर्कश स्वर से लोगों का कलेजा दहलता था; परन्तु ऐसे दुर्दिन का क्लाइव ने कुछ भी खयाल न किया और सुरंग के मुहाने की ओर उसी जगह पर अपने को आज भी पहुंचाया, जहां पर कि कल की रात खड़ा था।

आधीरात के ढलते ही बीन की सुरीली ध्वनि सुनाई दी और साथही उसके शेर के पैर की चाप भी कानों में खलबली पहुंचने लगी। क्लाइव उसी शेर के पैर की आहट पर कान लगाए हुए उसी के पीछे पीछे किले के दक्खिन ओर धीरे धीरे बढ़ने लगा। पैर की चाप भी धीरे धीरे क़ब्रिस्तान के पास आकर एकाएक ठहर गई। क्लाइव बड़ी सावधानी के साथ चारों ओर उस शेर का पता लगाने लगा, पर कहीं भी शेर का कुछ निशान नहीं दिखलाई दिया। इस विचित्र तमाशे को देख छिन भर के लिये उसका

कलेजा फिर कांप उठा। उसने सुरङ्ग के भीतर घुसने का बहुत साहस किया, पर न जा सका। फिर उसने अपने धड़कते हुए कलेजे को पोढ़ा किया और हंसकर आपही आप मनमें यों कहा कि, "खैर आज नहीं, तो कल अवश्य इस रहस्य का भेद बिना जाने न रहूंगा"। यों कह वह वहां से चला और अपने डेरे की ओर जाने लगा। जब वह आधे रास्ते में पहुंचा होगा कि एकाएक वही शब्द उसे अपने पीछे से सुन पड़ा। यह देख वह चिहुंक उठा और फिर कर पीछे देखने लगा; पर वहां था कौन? फिर उसने लालटेन लेकर चारों ओर खोज ढूंढ की, पर कहीं भी कुछ न दिखलाई दिया।

निदान फिर तो क्लाइब सीटी बजाता हुआ अपने डेरे की ओर बढ़ा। इतनेही में बिजली के चमकने पर उसकी रहस्य भेदकरनेवाली तीखी आंखों ने अपने से कुछ दूर पर एक शेर को देख लिया। बस, चट क्लाइब ने निशाना साध कर बंदूक दाग दी। उस गगनभेदी शब्द ने गङ्गा की तरङ्गों से टोकर खा कर एक अलौकिक करुणाध्वनि की सृष्टि की। क्लाइब ने फिर बिजली के चमकने से देखा कि शेर ज़मीन में पड़ा हुआ तड़प रहा है। बस, चट उसने शेर की ओर बढ़ते हुए बिगुल बजाना प्रारम्भ किया और बात की बात में हाथों में मशाल लिए हुए बहुतेरे गोरे और काले सिपाही वहीं पर पहुंच गए।

किन्तु हाय! यह क्या!!! अरे यह क्या बला है? हे राम! यह क्या!!! क्लाइब ने अपने सामने धर्ती में एक परम सुन्दर सोलह वर्ष के सुकुमार बालक को लोहू में डूबे हुए देखा, जिसके कलेजे में गोली लगी थी और मुंह से बराबर खून के फवारे छूट रहे थे। पासही शेर की एक बड़ी सी खाल पड़ी थी। पीड़ा से तड़पते, कराहते और दम तोड़ते हुए बालक के सरलतामय मुख को देखकर क्लाइब के बज्रहृदय में भी गहरी चोट पहुंची। उस समय उस अंग्रेज़ वीर के हृदय की वैसी ही अवस्था थी, जैसी कि हाथी के धोखे से मुनिकुमार सिंधु को मार कर महाराज दशरथ की हुई थी। अंग्रेज़ वीर क्लाइब थोड़ी देर तक सन्न हो कर वहीं खड़ा खड़ा उस बालक को निहारता रहा, फिर स्वयं उस बालक को अपनी गोद में उठाकर डाकृरी इलाज के लिये अपने कमरे में उठा ले गया।

डाकृर मर्शन साहब वहीं बुलाए गए, पर उसके आने के पहिले ही बालक की दुखदाई पीड़ा का अंत हो गया और उसके देहरूपी पिंजरे से प्राण पखेरू उड़ गया।

क्या हमारे रसज्ञ पाठकों ने इस स्वर्गीय बालक को चीन्हा? यह और कोई नहीं, हमारे इस छोटे से उपन्यास का नायक पूर्वपरिचित बालक बहार था। हाय! बेचारा बहार संसार की सारी बहार को अपने साथ ले कर अपनी मां की गोदी में सोने के लिये इस प्रकार अकाल ही में चल बसा। और हायरे अभागे मीर कासिम! आज तू राज्य और पुत्र इन दोनों रत्नों से रहित हुआ! किसकी सामर्थ्य है कि ललाट के लिखे को मिटा सकै!!!

[८]

मीर कासिम को खिलाने पिलाने के लिये प्रति दिन आधी रात के समय बहार खाने पीने का सामान लिए हुए उस पार से किश्ती खे कर आता और पिछली रात को लौट जाता था। वह अपने साथ बराबर गुल और धाय को भी लाता। रुपए पैसे की कमी न रहने के कारण बहार ने उस दरिद्र किसान को भी, जिसके यहां कि डेरा किया था, मालामाल कर दिया था। और वह किसान यह न जान कर भी कि ये लड़के किसके और कहां के हैं, जी जान से इनकी सेवा टहल करने लगगया था।

प्रति दिन आधी रात को बहार गुल और धाय को लिए हुए शेर की खाल ओढ़ कर सुरङ्ग

के रास्ते से कब्रिस्तान के भीतर मीर कासिम के पास पहुंचता। मीर कासिम गुल ग्रैार बहार का अपने कलेजे से लगा कर बहुत ही प्रसन्न होता; भांति भांति की स्नेह भरी बातों से उन दोनों के धीरज देता था। उसका वीरहृदय भी थोड़ी देर के लिये स्त्री-स्वभाव-सुलभ कोमलता से बदल जाता ग्रैार वह टकटकी बांध कर दोनों लड़के लड़की की ग्रोर घंटों तक निहारा करता।

गुल छोटे छोटे नाज़ुक हाथों से कभी कभी सुरीली बीन बजाती ग्रैार कभी कभी—

"बहार ग्राई ता उसके साथ ही,
गुल के क़दम ग्राए।
हुई रुख़सत चमन से यह ता,
वह फिर कब ठहरती थी!"

की तान लड़ाती ग्रैार ग्रभागा मीर कासिम इसी को सुख, वरन् स्वर्गीय सुख समझ कर थोड़ी देर के लिये ग्रपने भुनते हुए कलेजे के ठंढा करता। ग्रैार जब बहार बड़े स्नेह से उसे खिलाने बैठता, तब उस (मीर कासिम) के कलेजे में सैंकड़ों बिच्छुग्रों के एक साथ डंक मारने की पीड़ा होने लगती। बीती हुई सारी घटनाएं उसकी ग्रांखों के ग्रागे नाचने लगतीं ग्रैार वह मुर्दे की भांति काठ होकर धर्ती में घंटों पड़ा रह जाता।

जिस रात के बहार ने क्लाइव की गोली खा कर ग्रपनी जान दे दी थी, उस रात के बहार ग्रैार गुल नवाब से बिदा होकर उस पार कुटी के जाने के लिये ग्रंधेरे में ग्रपने के छिपाए हुए जाते थे। उस दिन धाय उसी पार कुटी ही में रह गई थी। उस दिन नवाब स्वयम् उन दोनों को किश्ती पर सवार कराने के लिये उन दोनों के ग्रागे ग्रागे था।

पहिले मीर कासिम के पैर की चाप क्लाइव ने सुनी थी, उसके पीछे ही बहार शेर की खाल ग्रोढ़े हुए जाता था। उसी समय बहार की बैरिन बिजली ने ग्रपनी चमक में क्लाइव के शेर की सूरत दिखलादी ग्रैार उसने भी शेर के धोखे में फंसकर गोली दागही ते दी। पक्के निशानेबाज़ क्लाइव की गोली हवा में सनसनाती हुई बहार के कलेजे के छेद कर पार निकल गई। यह देख मीर कासिम पकड़े जाने के डर से बेहोश गुल के, क्योंकि वह गोली की ग्रावाज़ ग्रैार बहार के गिरने के साथ ही बेहोश होकर धर्ती में गिर गई थी,—उठा कर सुरङ्ग की ग्रोर भागा। हा! ग्रपने प्राण सभी के ऐसे प्यारे होते हैं!!!

इसी कारण से ग्रब क्लाइव बहार के पास पहुंचा, तब उसने वहां पर सिवाय बहार के ग्रैार किसीके नहीं देखा था।

दूसरे दिन बहार के शव के कारण बड़ा गोलमाल मचा। कितने उसे पहिचान कर नवाब का बेटा बतलाने लगे ग्रैार कितनों ने इस बात के न मान कर उसे फ़रिश्ता बतलाया। उसकी पोशाक से सभों ने उसे मुसलमान समझा, इसलिये क्लाइव ने मुसलमानों के द्वारा ही उसे क़ब्र में रखने का बिचार किया। किन्तु मुसलमानों ने बहार के शरीर के छूना बिल्कुल ग्रस्वीकार किया। इसका कारण उन लोगों ने यह बतलाया कि, "ऐसे हसीन ग्रैार खुबरू इनसान नहीं, बल्कि फ़रिश्ते होते हैं, चुनांचे फ़रिश्ते के तन के छूना हमलोगों की ताक़त के बाहर है" इत्यादि।

किन्तु मुसलमानों की इस मूर्खता पर क्लाइव ने ध्यान न दिया ग्रैार दूसरे दिन सबेरे वीरोचित सम्मारोह के साथ स्वयं बहार के समाधिकर्म के पूरा किया।

[१०]

इस घटना के कई दिन बाद फिर उसी जगह से ग्राधी रात के समय बीन की मीठी ध्वनि सुनाई देने लगी। ग्रैार कभी कभी ऊपर लिखी हुई तान भी कान के छेदों में घुसने लगी। तब ते लोग बहुत ही चकित हुए ग्रैार ग्रापस में कानाफूसी कर कहने लगे कि क्या "बहार सचमुच बिहिश्त का फ़रिश्ता है? ग्रैार सचमुच क्या बहार ही क़ब्र

से निकल कर पहिले की भांति बीन बजाता और मीठी तान उड़ाता है ?"

इसी भांति लोग तरह तरह की बातें कर कर के तिल का पहाड़ बनाने लगे। अब तो पहरेवालों का कलेजा मारे डर के और भी दहल उठा और इस बात की सारी खबर फिर क्लाइव साहब के कानों तक पहुंची, जिसे सुन कर उसने मन ही मन यह निश्चय किया कि "इस मामले के अन्दर कोई न कोई गुप्त रहस्य ज़रूर छिपा हुआ है"। यह सोच कर उसने कई रातों को खुद घूम घूम कर बहुत खोज ढूंढ़ की, परन्तु सिवाय बीन की आवाज के और वह किसी बात का भी पता न लगा सका। आठ दस दिन योंहीं बीत गए; एक दिन सबेरे क्लाइव अपने कमरे में बैठा हुआ कोई चिट्ठी पढ़ रहा था, इतने ही में किले के बाहरी हिस्से में बड़ा कोलाहल मच उठा जिसे सुन क्लाइव ने मन में समझा कि मालूम देता है मीर कासिम ने दोबारः फौज इकट्ठी कर के किले पर हमला किया है। यह सोचते ही उसकी तलवार तेज़ी के साथ म्यान के बाहर निकल पड़ी और वह जल्दी से उठ किले की दीवार के पास जाकर बाहर की ओर झांक कर देखने लगा कि यह कैसा हल्ला गुल्ला है।

किन्तु उसने देखा कि किले के आस पास एक भी मुसलमानी फ़ौज नहीं है और न कहीं मीर कासिम ही दिखलाई देता है। इतने ही में एक सेनापति ने आकर क्लाइव से यों कहा—

"जनाब आली! आपने अपने हाथ से जिस खूबसूरत लड़के को गोली से मार डाला था, वही लड़का कब्र से निकल कर कब्र के पास ही हरी हरी नर्म घास पर पड़ा सो रहा है। अगर न यकीन हो तो खुद मुलाहज़ा किया जाय"।

क्लाइव ने यह बात सुनी सही, पर वह इस खबर पर किसी तरह भी विश्वास न कर सका। किन्तु सच्ची बात जानने और इस विषय के गुप्त रहस्य तक पहुंचने की इच्छा से वह तुरन्त खबर देनेवालों के साथ बहार की कब्र की ओर चला। उसने उस कब्र के पास पहुंच कर क्या देखा कि सचमुच वही बालक, जोकि कई दिन हुए, गोली खा मरा था, आंखें बन्द किए हुए, वहीं पर, कब्र के पास ही सोया हुआ है।

इस विचित्र तमाशे को देख कर थोड़ी देर के लिये क्लाइव के होश हवास उड़ गए। पर फिर उसने अपनी मानसिक दुर्बलता को रोका और भली भांति अपने को सम्हाल कर धीरे धीरे उस बालक के माथे पर हाथ फेरना प्रारम्भ किया, जिससे क्लाइव को जान पड़ा कि बालक का माथा बरफ़ सा ठंढा है और नाक पर हाथ रखने से जाना गया कि सांस नहीं चलता है। तब निश्चय हुआ कि यह मुर्दा है।

तब तो जितने लोग वहां बटुरे थे, सभों के अचरज का ठिकाना न रहा, पर क्लाइव का अचरज देर तक नहीं टिक सका। उसने तुरन्त अपने को सम्हाल कर और भली भांति मुर्दे को देख कर कहा—

"यह लड़के का नहीं बल्कि लड़की का मुर्दा है।"

यद्यपि उस मुर्दे के बदन पर मर्दानी पोशाक थी, पर क्लाइव की सूक्ष्मदृष्टि ने उस पोशाक के भीतर तक पहुंच कर इस बात को साफ कर दिया कि यह लड़का नहीं, वरन लड़के की पोशाक पहिरे हुई लड़की है।

निदान दूसरे दिन शुक्रवार को सबेरे से फिर शोकसूचक बाजे बजने लगे। क्लाइव स्वयं फ़ौजी रस्म के अनुसार उस लड़की के गाड़ने की इच्छा से बहार की कब्र के पास गया। उस समय क्लाइव की आज्ञा से हिन्दू मुसलमान सभी उस लड़की की समाधिक्रिया में शामिल हुए। उस समय क्लाइव ने शोक में डूब कर जो कुछ वाक्य कहे थे, उनमें से कुछ थोड़े से यहां पर लिखे बिना कलम आगे किसी तरह नहीं बढ़ना चाहती—

"Friends! we have killed perhaps two innocent children, whoever they may be.

Nothing can undo what is done. Let us do all honour that we can do to them. We shall have another military funeral for this girl, say for this angel !!"

बहार की कब्र के पास ही लड़की का प्राण-शून्य कलेवर दूसरी कब्र में रखने पर समाधि-क्रिया पूरी की गई। तब जितने लोग वहां पर थे, उन सभोंने क्लाइव के साथ आंखों से आंसू टपकाते हुए उन लड़के लड़कियों की दोनों कब्रों पर खूब ही फूल बर्साए। इसके बाद बालकबालिका के स्मरणार्थ क्लाइव के आज्ञानुसार प्रतिदिन किले में दिन में तीन बार तोप दागी जाने लगी।

इसके कुछ दिन पीछे क्लाइव कलकत्ते चला-गया, ग्रैार उसके जातेही तोप की सलामी भी जो कि लड़के लड़कियों के स्मरणार्थ प्रति दिन होती थी, बन्द होगई; किन्तु यह बात आज दिन तक भी जारी है कि मुंगेर के रहनेवाले (विशेष कर मुसलमान) प्रति शुक्रवार को फूलों से उन बालक बालिकाओं की कब्रों को सजाते, मान मन्नत करते, ग्रैार मनोकामना पूरी होनेपर बड़ी धूम धाम से उनकी पूजा करते हैं। उस जगह को आज दिन मुंगेरवाले "पीरशाही" कहते हैं।

[११]

इस लड़की को हमारे पाठकों ने अवश्य ही चीन्ह लिया होगा। यह ग्रैार कोई नहीं, इस छोटे से उपन्यास में लिखी घटना की नायिका गुल ही थी।

जैसे बहुत लोगों ने बहार को पहिचान कर उसे नवाबज़ादा बतलाया था, वैसे ही कईयोंने गुल को भी चीन्ह कर नवाबजादी कहा। ग्रैार दोनों के एक स्वरुप को देखकर क्लाइव ने भी इस बात पर विश्वास किया ग्रैार यह भी उसके दिल ने भली भांति समझ लिया कि नवाब जरूर ही यहीं पर कहीं पासही छिपा हुआ है। पर ऐसे गुलाब से बच्चों के मरने से अब वह बहुत दिनों तक कभी जी नहीं सकता। क्लाइव ने ठीक ही सोचा था, क्योंकि अंत में सचमुच ऐसा हुआ ग्रैार उस बिचारे ने लड़के लड़कियों के ग़म में अपने को आप मार डाला।

यह बात हम ऊपर कह आए हैं कि जिस रात को बहार मारा गया, उस रात को उसकी धाय उसी पार कुटी में थी, ग्रैार मीर कासिम बहार के गोली खाकर गिरते ही गुल को उठा सुरङ्ग में जा कर छिप बैठा था। गुल बेहोश थी, सो बड़ी बड़ी कोशिश से होश में लाई गई ग्रैार बहार की बात पागल की भांति अपने पिता से पूछने लगी। हाय! उस समय कमबख्त मीर कासिम के चित्त की क्या दशा थी, इसे हम किसी तरह भी नहीं लिख सकते। वह एक तरह पागल हो गया था ग्रैार उसका पागलपन यहां तक बढ़गया था कि उसी रात को, जिस रात को कि बहार मारा गया, वह गुल को उसी सुरङ्ग में सोती हुई छोड़ कर एक ग्रोर को भाग निकला ग्रैार उसी रात को मुंगेर की सीमा के बाहर निकल गया। फिर उसे कभी किसीने इस संसार में जीता जागता न देखा। जान पड़ता है कि उसने बहुत जल्द अपनी जान का फैसला आपही कर डाला होगा।

दूसरे दिन धाय ने जब कि बहार ग्रैार गुल को लैाटते न देखा तो बहुत ही खेद किया ग्रैार घबराकर वह मुंगेर वापस आई। किन्तु हाय, उसने आकर बहार की जो कुछ दशा अपनी आंखों से देखी, इससे उस बेचारी का ऐसा बुरा हाल हुआ, जैसा कि मा का अपने बच्चे के मारे जाने पर होता है।

उसने अपने को बहुत छिपाकर बहार की समाधिक्रिया देखी ग्रैार फिर वह हर तरह से अपने को छिपाती हुई गङ्गा किनारेवाली सुरङ्ग के रास्ते से गुल के पास पहुंची, क्योंकि वह सुरङ्ग के भीतर जाने का ढंग जानती थी। उसने भीतर जाकर अकेली गुल को जमीन में पड़ी पाया।

गुल ने धाय को देखते ही उसके गले लपट कर बहार ग्रैार मीर कासिम का हाल बार बार पूछना

प्रारम्भ किया। धाय बेचारी मीर कासिम का तो कुछ हाल जानती ही न थी, इसलिये उसने नवाब के बारे में कुछ भी न कह कर बहार की अकाल-मृत्यु का सारा हाल गुल से कह सुनाया।

सब सुन कर गुल ने कुछ समझा कि नहीं यह तो वही जाने; पर उस समय जैसा इसका भाव था, इससे यही जान पड़ता था कि वह बिलकुल पागल हो रही थी और आंखें फाड़ फाड़ कर धाय की ओर निहारती हुई उससे यही बार बार पूछ रही थी कि बहार कहां है, बाबा कहां हैं? हा! धाय बार बार गुल को कलेजे से लगा कर यों कहती कि "बच्ची! तेरा भाई अंग्रेजों के हाथ से मारा गया और तेरा बाप फिरंगियों से हार और बेटे का मारा जाना देख कर कहीं भाग गया होगा।" पर बिचारी भोली लड़की गुल यह सब कुछ भी नहीं समझती थी। और वह क्योंकर समझ सकती थी! जो गुल इस संसार में अपने पिता, भ्राता और धाय के अलावे और किसीको चीन्हती भी न थी, जो सोलह बरस की उम्र में पैर रख कर भी धूल में लोट लोट कर पुतलियों और गुड़ियों के साथ या बहार के साथ खेला करती, जो पढ़ने लिखने के समय भी 'अलिफ़ बे' कहती हुई बहार ही का मुंह निहारा करती, वह नादान या भोली लड़की बिचारी गुल यह बात क्योंकर समझ सकती थी कि काल और भाग्य के भयानक चक्र की चपेट इसे कहते हैं और इस चक्की में अभागे लोग इस तरह पीसे जाते हैं !!!

निदान धाय ने गुल को बार बार समझाया कि किस तरह तेरा करम फूट गया है, अब इस दुनियां के पर्दे पर बहार का नाम निशान भी नहीं है और अब हज़ार हज़ार तरह से हज़ार बार जान देने पर भी बहार का पाना गैरमुमकिन है, क्योंकि इस नापाक दुनियां में अब बहार से मुलाकात होही नहीं सकती, इत्यादि। पर गुल ने एक न समझा और धाय से बार बार यही पूछना प्रारम्भ किया कि "बहार कहां है, बाबा जान कहां हैं?"

हजार तरह से समझाने पर भी, बहार के न पाने पर भी, गुल बहार के लिये जरा भी न रोई। केवल कान तक फैली हुई उसकी आंखों की पुतलियां चक्कर खाने लगीं। एकाएक उसके मुखड़े पर स्याही फैल गई। उसका चेहरा गंभीर हुआ, अङ्ग स्थिर हो गए और वह पत्थर की भांति अचल हो कर वहीं बैठी रह गई। कभी कभी यह धाय से वही बात पूछती, जो ऊपर लिखी जा चुकी है, कभी कभी अपनी उङ्गलियों से बीन के तार छेड़ती, कभी कभी ऊपर लिखे हुए ग़ज़ल के टुकड़े को गा उठती और फिर पत्थर की मूरत की भांति जहां की तहां बैठी रह जाती। हाय! क़ाइव, यह तूने क्या किया! बहार के जीवनप्रदीप के साथ ही तूने गुल के जीवन-प्रदीप को भी बुझाही दिया! हा हन्त! हा हन्त!! हा !!!

कभी कभी आधी रात को गुल फिर बीन बजाती और अपने आपे में न रह कर गाती थी, जिसे लोगों ने बहार के मरने पर सुना था। बहार के मरने के आठ दस दिन बाद एक दिन आधी रात के समय गुल धाय को सुरङ्ग ही में छोड़ अकेली ही गङ्गा किनारे निकल कर टहलने लगी, क्योंकि जबसे बहार मारा गया और नवाब गायब हुआ, गुल धाय के साथ सुरङ्ग ही में रहती थी।

निदान गुल आधीरात को इधर उधर घूमती हुई चुंबक से खैंचे हुए लोहे की भांति अपने भाई बहार की क़ब्र की ओर चली और क़ब्र के पास पहुंच कर उसीके पास ही सो रही।

हा! कदाचित् जगदीश्वर ने यह समझ कर कि इस पापी संसार में गुल के रहने का अच्छा स्थान हैही नहीं, उसे भी स्वर्ग में बुला कर बहार से मिला दिया होगा!

सवेरा होतेही गुल को लोगों ने बहार की कब्र के पास मरी हुई पाया और फिर जो कुछ हुआ, वह हाल हम ऊपर लिख ही आए हैं।

लोग कहते हैं कि यमज (एक साथ पैदा हुए) बालकों में से एक के मरने पर दूसरा भी मर जाता है। यह बात कहां तक सच है सो ईश्वरही जाने, पर यहां पर तो यह बिलकुल ही सच हुई।

गुल की समाधिक्रिया भी अभागीन धाय ने देखी और उसी दिन गङ्गा में डूब कर उसने अपनी भी जान दे दी।

जगदीश्वर! तू दयामय है, इस लिये आशा होती है कि तूने गुल और बहार की स्वर्गीय आत्मा को परमशान्ति अवश्य ही दी होगी!

"बहार आई तो उसके साथही
गुल के क़दम आए।
हुई रुख़सत चमन से यह तो,
वह फिर कब ठहरती थी!"

श्री किशोरीलाल गोस्वामी।

रहिमन विलास

गहि सरनागत राम की भव सागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर और न कछू उपाव॥
और न कछू उपाव पाप के बोझ दबाए।
पूर्व कर्म की वायु भयानक लहर उठाए॥
कहुं सुझात नहिं ठौर सुदुस्तर भव सागर महि।
चहत बचन जौ मूढ़ अजौं प्रभु सरनागत गहि॥ १॥

यह रहिमन सब सङ्ग लै उपजत नाहिन कोय।
सबै प्रीति अभ्यास बस होत होत ही होय॥
होत होत ही होय सबै अवसर निज पाए।
करु उद्योग उपाय अतिहि दृढ़ चित्त लगाए॥
दुरुह काज लखि 'दास' हारि हिम्मत तू जिन रह।
सब कछु मनुजहि करै राखु निश्चय निज जिय यह॥ २॥

निज कर क्रिया रहीम कहि सुधि भावी के हाथ।
पासे अपने हाथ में दांव न अपने हाथ॥
दांव न अपने हाथ जदपि है हाथ पराए।
पै बिनु कर्मन किए शुभाशुभ फल नहिं पाए॥
भाग्य भरोसे भूलि समय जिनि चूकै रे नर।
होनी होय सुहोय करैं कर्तव्य जु निज कर॥ ३॥

रूप, कथा, पद, चारु पट, कञ्चन, दूबा, लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति मोल रहीम विशाल॥
मोल रहीम बिशाल अधिकतर सुख उपजावै।
ज्यों ज्यों तिनमें गड़ी तत्व त्यों त्यों दरसावै॥
'दास' प्रेम को नेम बिलच्छन औरहु बेहद।
ताके आगे कहा मोल है रूप कथा पद॥ ४॥

बड़न कोऊ जौ घटि कहै नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे कछु दुख पावत नाहिं ॥
कछु दुख पावत नाहिं जगतधर गिरिधर भाखे।
पूरन ब्रह्म अपार नाम नन्दनन्दन राखे ॥
वामन रूपहिं धरयो भए बैराट सोऊ तौ।
'दास' घटैं नहिं नेकु कहै लघु बड़न कोऊ जौ ॥ ५ ॥

ससि, सकोच, साहस, सलिल, साजे नेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं, घटे न तिनकी सीम ॥
घटे न तिनकी सीम देखतहि मैं घटि जाई।
बढ़त कछुक दिन लगै जतन बहु भांति बनाई ॥
बढ़ि कै जब यह घटै जाइ सोभा ग्रैारहु नसि।
जदपि सोई पै कृष्ण पक्ष फीको लागै ससि ॥ ६ ॥

बड़े दीन के दुख सने होत दया उर आन।
हरि हाथी के कब हुती कहु रहीम पहिचान ॥
कहु रहीम पहिचान रही कब हरि हाथी सन।
सहज सुभाउ दयालु देखि नहिं सकै दुखित जन ॥
पर उपकारिन साथ काम नहिं जान चीन के।
सब संसार कुटुम्ब लखैं हित बड़े दीन के ॥ ७ ॥

कहि रहीम नहिं लेत हैं रहो विषय लपटाइ।
घास चरे पशु आप तैं गुर लौं लाए खाइ ॥
गुर लैां लाए खाइ बिधाता प्रकृति बनाई।
बोझ ढोइ नित मरैं पढ़न सों जान छिपाई ॥
आम्र वृक्ष तजि दूर बेलि बब्बूलहिं लपटहि।
भव दुख सुख सों सहैं सहज हरिनाम न मुख कहि ॥ ८ ॥

रहिमन राज सराहिए जो बिधु के बिधि होय।
रवि को कहा सराहिए उगै तरैयां खोय ॥
उगै तरैयां खोय नाहिनै तासु बड़ाई।
बड़े सराहन जोग सोई जो जग सुखदाई ॥
प्रभुता मद जिनि भूलु प्रजापालहि किन सुख सन।
यह सरीर नसि जाय रहै इक कीरति रहिमन ॥ ९ ॥

दुरदिन परे रहीम प्रभु दुरथल जैये भाग।
जैसे जैयत घूर पर जब घर लागै आग ॥
जब घर लागै आग सबै मरजाद भुलावै।
समुझि समय को फेर सबै सहतै बनि आवै ॥

जैसो समयो देखि रहै तैसो ह्वै तू किन ।
मैान होइ सहु दास परै जो कबहुं दुर्दिन ॥ १० ॥

क्षमा बड़न को उचित है छोटन को उतपात ।
कहँ रहीम प्रभु को घट्यो जो भृगु मारी लात ॥
जो भृगु मारी लात ग्रैारहु ग्रादर दीनो ।
लघु प्रकृतिहिं पहिचानि नेकु जिय रोस न कीनो ॥
नदी नीर गम्भीर काम कहँ भवर पड़न के। ।
छिल छिल जल इतराय सहज गुण क्षमा बड़न को ॥ ११ ॥

जो गरीब सों हित करैं धन रहीम वे लोग ।
कहां सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग ॥
कृष्ण मिताई जोग कहां शबरी गुह बानर ।
तजि दुरजोधन पाक शाक खायो जु बिदुर घर ॥
जैान प्रेम मन करै कहा तो लै ग्रमीर कोँ ।
तेई नर जग धन्य करैं हित जो गरीब सों ॥ १२ ॥

कुटिलन संग रहीम बसि साधु बचैाती नाहिं ।
नैना टैना करत हैं उरज मरोरे माहिं॥
उरज मरोरे माहिं फंसे शिव नारद ज्ञानी ।
ग्रोछे संगति बैठि होत बित हित की हानी ॥
सबै साधुता दाबि रँगत सहजहिं ग्रपुने रँग ।
सत सङ्गत मैं बैठु दूरि तजु तू कुटिलन सँग ॥ १३ ॥

कमला यह न रहीम थिर सांच कहत सब कोय ।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय ॥
क्यों न चंचला होय सिंधुतनया चंचलमति ।
एकन को करि तुष्ट देइ तजि सहज चपलगति ॥
बड़न गिरावै दास धरै छोटन सिर समला ।
कोटि जतन किन करैा रहै नाहिन थिर कमला ॥ १४ ॥

जाइ समानी ग्रब्धि मैं गङ्ग नाम भयो धीम ।
काकी महिमा ना घटी पर घर गए रहीम ॥
पर घर गए रहीम होइ ग्रवसहिं हलकाई ।
जदपि न पूँजी तदपि भरम निज गेह सुहाई ॥
ग्राधे पेटहि खाइ सहै बरु सरबस हानी ।
पर घर धाए 'दास' बड़ाई जाइ समानी ॥ १५ ॥

रहिमन कहत जो पेटु सों क्यों न भयो तू पीठ ।
भूखे मान घटावही भरे डिगावै डीठ ॥